

...गुरु

...क्ष्मीनारायण मिश्र

८१२.८
लक्ष्मी/ज-१

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पुस्तकालय
इलाहाबाद

वर्ग संख्या .... ८१२.८ ....
पुस्तक संख्या .... लक्ष्मी/ज-१ ....
क्रम संख्या .... ६०६८ ....

जगद्गुरु

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

आदि शंकराचार्य के
जीवन पर
आधारित
नाटक

लक्ष्मीनारायण मिश्र

प्रकाशक—
कौशाम्बी प्रकाशन
दारागंज, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
संवत् २०१५ वि०
मूल्य दो रुपये

मुद्रक—
राम प्रिंटिंग प्रेस
प्रयाग

प्रेरणा का उद्गम

"क्या आप मानते हैं कि शंकराचार्य ने बौद्धधर्म को निकाल फेंका ?" इस प्रश्न के उत्तर में मृत्युञ्जय गांधी ने कहा था—"मैं मानता ही नहीं कि शंकराचार्य ने बौद्धधर्म को निकाल फेंका। उसका अच्छे से अच्छा भाग उन्होंने ले लिया। आज जितना बौद्धधर्म हिन्द में है, उतना न चीन में है, न जापान में, न वर्मा में, न लङ्का में। बुद्ध भगवान् अगर आज आवें तो कहेंगे कि बौद्धधर्म का सत्व तो हिन्दस्तान में ही है, बाकी सब तो भूसा है।"*

गांधी-चरित पर आधारित पिछले नाटक 'मृत्युञ्जय' की रचना-अवधि में जगद्गुरु शंकर के कृतित्व पर उनका यह मत मेरे भाव-लोक को जगा गया। भगवान् शंकर के जिस दिग्विजय के आधार पर काव्यों, आख्यानों की रचना हुई, वह जितना धार्मिक था, उतना ही सांस्कृतिक भी था। आचार्य शंकर धर्म और संस्कृति को अभेद मानते थे। यही स्थिति अजातशत्रु गांधी की भी थी। गांधी का स्वतन्त्रता-संग्राम राजनीतिक न होकर धार्मिक और सांस्कृतिक बन गया था। जिस देश में राजनीति धर्मशास्त्र का अङ्ग परम्परा से बनी रही, उस देश में उसे धर्म की आँखों से देखा गया, न कि छल, कपट या मिथ्याचार की आँखों से, पश्चिम में जिसके लिए एक ही शब्द डिप्लोमेसी है, जिसे हम कूटनीति का नाम दे सकेंगे। शंकर के अद्वैत में व्यक्तित्व का लोप है और गांधी की चरम कामना भी यही रही कि वे अपने व्यक्तित्व को शून्य की

---

* बापू की कारावास-कहानी, पृष्ठ ३४१

कोटि में पहुँचा दें। सर्वोत्तमभाव और अभेद दर्शन, जो वेदान्त में अंकुरित हुआ; व्यास, शुकदेव, गौडपाद के रूप में क्रमशः वृद्धि पाकर आचार्य शंकर रूपी अक्षयवट बना, जिसकी छाया में गांधी को पोषण और प्राण मिला था। आचार्य शंकर और युगपुरुष गांधी परस्पर पूरक और समानधर्मा बिना किसी सन्देह के कहे जा सकते हैं। इस देश के विशाल इतिहास में इन दोनों महापुरुषों की तुलना की जा सकती है। अपने युग में शंकर से देश की एकता, श्री और सिद्धि के लिए जो कार्य सम्पादित हुए, वही गांधी से भी हुए हैं। गांधी की धारणा से आचार्य शंकर की धारणा सुगम हो जाती है।

हिमालय से कन्याकुमारी तक और पश्चिम समुद्र से पूर्व समुद्र तक की भारत-भूमि को शंकर ने भगवती पार्वती के रूप में देखा था। आदि माता और मातृभूमि के अभेद दर्शन से अद्वैत दर्शन के प्रतिपादक आचार्य शंकर रस-सिद्ध कवि बन गये। 'सौन्दर्य-लहरी' और 'आनन्द-लहरी' में उनका कवि-कर्म कितना रस-सिक्त और सम्मोहक बन गया है, सहृदय और पण्डितजन उससे परिचित हैं। उनके स्तोत्र, जो देवी-देवताओं, यहाँ तक कि शाक्य मुनि को भी लक्ष्य कर लिखे गये हैं, काव्य के सभी गुणों से अलंकृत हैं--

य आस्ते कलौ योगिनां चक्रवर्ती।
स बुद्धः प्रबुद्धोऽस्तु मच्चित्तवर्ती॥

गौतम बुद्ध के प्रति उनके इस स्तोत्र से कौन कहेगा कि वे उनके निन्दक रहे। आचार्य शंकर के नाम से प्रचलित साहित्य इस बात का प्रमाण है कि निन्दा और विरोध की वृत्ति का परिचय उन्हें नहीं था। शील और विनय के अगाध समुद्र आचार्य शंकर ने मेधा, तर्क और शास्त्रार्थ में भी शील और विनय को अपने

आगे रखा, तभी कुल बत्तीस वर्ष की आयु में समूचे देश में उनका विरोधी बना रहना किसी भी विवेकी पुरुष के लिए सम्भाव्य न हो सका। दिग्विजय व्यक्ति शंकर की नहीं, श्रुति-सिद्ध शंकर की हुई थी, जिसे वे बराबर श्रुति की विजय कहते रहे। अनेक मतमतान्तरों के कारण देश का धर्म जो जर्जर हो उठा था, वेदान्त की संजीवनी से शंकर ने उसे स्वस्थ कर लोक-जीवन को अभेद बुद्धि और समन्वय का मार्ग दिया था। यह मार्ग श्रुति का मार्ग था, जो उनके युग में प्रायः दुर्गम बन गया था। उसका परिष्कार शंकर ने किया और अब वह लोक के हित में निरापद बन गया।

शंकर के पूर्व भारत में उन दिनों धर्मों और मतों की संख्या कहते हैं प्रायः तीस से भी अधिक हो चुकी थी। 'हर्षचरित' में बाणभट्ट ने इन मतों के जो नाम दिये हैं उन्हीं से सिद्ध होता है कि बाण ने कुछ की गणना की और कुछ को छोड़ भी दिया। महामांस-विक्रय और ललाट से हवन-कुण्ड का काम लेना, ऐसे अनेक रोमांचकारी बीभत्स दृश्य धर्म के साधक चला चुके थे। शंकर ने सभी सम्प्रदायों का संस्कार कर पञ्चदेवोपासक स्मार्त-धर्म की स्थापना की, जिसमें कापालिक भी समा गये और सौगत भी। आरम्भ में बौद्धधर्म भी वेद-वाह्य नहीं था। अपनी उक्तियों से इसे सिद्ध कर सौगतों को श्रुति की परिधि में ले आने में शंकर सफल हुए थे। जिनका सम्बन्ध पूर्वजों की परम्परा से छूट चुका था, वे फिर उसी में लौट आये। इस प्रकार तर्क की ऊसर भूमि फिर उर्वर बनी थी।

देश की एकता का जो कार्य किसी सम्राट् या राज्य-शक्ति से सम्भव न हो सका था, उसे योगी शंकर ने चरितार्थ किया। चार पीठों की स्थापना उस विभूति ने किस दैवी विवेक से की थी कि इस युग में देश के खण्ड हो जाने पर भी एक

पीठ भी भारत से अलग न हो सका ! उस काल के बौद्ध, जैन और वैदिक दार्शनिक जो अपने ग्रन्थ संस्कृत में ही लिखते रहे, उनका यह कार्य समूचे राष्ट्र की एकता के लिए एक राष्ट्र-भाषा का संकेत है, जिसकी ओर राष्ट्रपिता गांधी ने इस युग में ध्यान दिया था और शंकर ने अपने समय के पण्डितों के साथ उस युग में।

समन्वय, समरसता और लोक-संग्रह के साधक आचार्य शंकर के जीवन पर आधारित यह नाटक उनके पद-चिन्हों पर जिस अंश तक चल सका है, वही इसकी सफलता कही जायेगी। योगी शंकर को इस नाटक का नायक बनाना निस्सन्देह दो हाथों से समुद्र पार करने के समान है। मेरी कल्पना में उनकी विभूति का जो रूप, जो रङ्ग, जो रस उतरता रहा है वही इस रचना की सिद्धि है। आचार्य शंकर सम्बन्धी उपलब्ध साहित्य मनोयोग और श्रद्धा से पढ़-गुन लेने पर लेखनी उठी थी, पर कवि-कर्म कितना ग्रहण कर सका और कितना नहीं, यह मैं स्वयं न कह सकूगा। पाठकों के चित्त का अनुरञ्जन जो यह नाटक कर सका, शंकर के साथ मण्डन और भारती, जो उनके मन के आकाश में नक्षत्र-से उग आये और इन पात्रों के माध्यम से जो उन्हें अपने लोक, उसके धर्म, दर्शन और कार्य-व्यापार का बोध मिला, तब जिस श्रम का निमित्त मुझे बनना पड़ा, वह करणीय और स्थायी बनेगा। मेरी सीमा मेरे पाठक जानते हैं। वे यह भी जानते हैं कि सरस्वती की सीमा अपार है। मेरी सीमा के प्रति सन्देह न कर सरस्वती की अपार सीमा में जिनकी श्रद्धा न डिगेगी, उन्हें इस कृति से निराश न होना पड़ेगा।

आचार्य शंकर की जीवन-सम्बन्धी कुछ दैवी चमत्कार की बातें भी इस नाटक में आ गयी हैं। 'शंकर-दिग्विजय' के महाकवि के भाव-लोक में वे बातें सत्य हैं। पुराण-परम्परा में भी वे

बातें सत्य हैं। उन्हें असत्य मान लेने पर हमारा भाव-लोक दरिद्र और रस-हीन हो जायेगा। विकट भौतिकवादी भी स्वप्न देखते हैं, अँधेरे में रस्सी में साँप का भ्रम उन्हें भी होता है। भय के भाव का भोग उठा लेने पर उनके भ्रम का बड़ी कठिनाई से निवारण हो पाता है। भाव का भोग जिस विधि से मिले, कवि-सत्य बनकर रहता है। कवि-सत्य एक ही साथ भौतिक और आध्यात्मिक दोनों है और उसकी चरम सिद्धि तो भौतिक और अध्यात्मिक को एक कर देने में है। शंकर चरित के दैवी-चमत्कार की बातें पाठकों के भाव-लोक में सत्य बन जायेंगी, मुझे इसका विश्वास है।

वस्त्र, आभूषण, भवन, शास्त्रार्थ आदि से सम्बन्ध रखने वाले कुछ शब्द उस काल के इस नाटक में आ गये हैं। ऐसे शब्द, जो तब अपने अर्थ में रूढ़ि बन चुके थे, जिनका व्यवहार आज की भाषा में नहीं होता, फिर भी जो प्रसङ्ग पर विचार करते ही खुल जाते हैं, किसी भी अच्छे भाषा-कोष में वे शब्द मिल जायेंगे, इसलिए उनकी तालिका न देना ही मुझे ठीक लगता है। संवादों के माध्यम से शंकर का पूरा जीवन और देश की धार्मिक, सामाजिक परिस्थिति इस नाटक में आ गयी है। आचार्य शंकर के चरित में रस का योग कठिन था पर वे स्वयं सरस कवि थे, इसलिए रसों का उद्भव अस्वाभाविक नहीं कहा जायेगा।

—लक्ष्मीनारायण मिश्र

वैशाख पूर्णिमा,
सम्बत् २०१५ वि०
प्रयाग।

पात्र-सूची

पुरुष-पात्र

आचार्य शंकर—आठ वर्ष की आयु में संन्यासी, आदि शंकराचार्य।
विश्वरूप—प्रसिद्ध मीमांसक मण्डन मिश्र, संन्यासी होने पर सुरेश्वर।
रामस्वामी } आचार्य शंकर के कुल-पुरुष क्रमशः पितामह और
चन्द्रमणि } पितृव्य।
पद्मपाद—शंकर के वेदान्ती शिष्य, पूर्व नाम सनातन।
श्रुतिकतु—कुमारिल के शिष्य।
राजशेखर—केरल-नरेश, कवि, विद्याव्यसनी।
देवगुरु विश्वरूप का शिशु पुत्र।
माधव—विश्वरूप का एक विद्यार्थी।
मधुकर—गज का आरोहक।
विश्वरूप के विद्यार्थी, दौवारिक, शंकर के ज्ञातिजन, विद्वद्वृन्द आदि।

स्त्री-पात्र

भारती—विश्वरूप की विदुषी पत्नी।
रेवती—भारती की परिचारिका।
शंकर के कुल की एक वृद्धा स्त्री, अन्य ग्राम्य स्त्रियाँ।

स्थान

माहिष्मती नगरी और कालटी ग्राम।

समय

विक्रम की नवीं शताब्दी का मध्यकाल।

पहला अङ्क

[माहिष्मती नगरी में यशस्वी मीमांसक मण्डन मिश्र का आकाशचुम्बी, अनेक रंगों, रत्नों और चित्रों से अलंकृत भवन। भवन के दोनों ओर का उद्यान पीछे सब ओर फैल गया है। बीच-बीच में लता कुञ्ज और विभिन्न ऋतुओं के फूलों की पाली। सामने परकोटे के घेरे में विस्तृत समतल भूमि, जिसके मध्य में विशाल वट वृक्ष के तने के सब ओर कई रंगों में चित्रित मंच, जिस पर कई भद्र आसन पड़े हैं। पहले और दूसरे तल के स्तम्भ सीधी रेखा में, विभिन्न शालभंजिका नारी मूर्तियों से अलंकृत हैं। स्तम्भों के सहारे शुक, सारिका आदि गृह-पक्षी पिंजड़ों में टँगे हैं। हरिण और मयूर मिथुन भवन के द्वार से निकल कर उद्यान के किसी भाग में चले जाते हैं और फिर भवन में लौट आते हैं। अग्निहोत्र का धूम भवन के ऊपर उठ रहा है। कई कण्ठों से निकली, ताल और स्वर में वेद के मन्त्रों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। दौवारिक भवन-द्वार से पाँच पग आगे बढ़कर शंख फूँकता है जिसकी प्रतिध्वनि दिशाओं से टकरा कर जैसे धरती की ओर लौट आती है।]

दौवारिक [दोनों हाथ में शंख को ऊपर उठाकर] अग्निहोत्र अब समाप्त हो रहा है। देवी के साथ स्वामी दण्ड भर के भीतर ही यहाँ आकर अर्थीजन जो यहाँ आये हों, सब को दान से तुष्ट करेंगे। [वट वृक्ष के आगे बैठे लोगों में गति का संचार होता है।] अभी आप लोग वहीं रहें। स्वामी जब इधर चलेंगे, आप के कान में शंख की ध्वनि पड़ेगी, तब आप लोग नित्य की भाँति व्यवस्थित रूप में एक, एक के क्रम से उनके सम्मुख आकर, अपने भाग्य के अनुरूप दान लेकर मंगल शब्दों के उच्चारण के साथ अपने घर लौटेंगे।

[दौवारिक द्वार के दायें खड़ा होता है।]

एकजन [वट वृक्ष के आगे के लोगों में] दान भी भाग्य के अनुसार ही मिलता है ...

दूसरा [उन्हीं में, अपना ललाट छूकर] आज इसमें जितना लिखा हो...

तीसरा पण्डित याचक के मुँह की ओर कभी नहीं देखते। उनकी आँखें याचक के पैरों की ओर ही रहती हैं···

पहला धरती की ओर कहो...तुम्हारे पैर की ओर क्यों देखने लगे वे?

तीसरा बात एक ही हुई। उसी धरती पर तुम्हारे पैर रहते हैं···कभी उनकी आँखों के नीचे, कभी तनिक आगे ··नगर की सभी पण्य-वीथी घूम आने पर तुम्हारे पैर के उपानह नहीं मिलेंगे। विधाता की चतुराई इनके रचने में समाप्त हो गई होगी।

[सब एक साथ हँस पड़ते हैं।]

दूसरा लगता है भंग की झोंक अभी गई नहीं···

तीसरा अरे भुजंग! दायाद सुन लेंगे तो मेरे हाथ का जल भी न लेंगे। मेरे कुल में दान लेना मना है। भंग भवानी के लिए

जब पास में टका नहीं होता तभी चोरी से यहाँ आ जाता हूँ। माता सुनें तो अन्न छोड़ दें और तात तो...

पहला सिर काट लें क्यों जी···?

तीसरा अकेला पुत्र हूँ···परलोक के भय से छोड़ भले दें पर बिना घर से निकाले न रहेंगे।

दूसरा तब तो मैं आज कह दूँगा···[सिर हिलाता रहता है।]

तीसरा [दोनों हाथ जोड़कर] ना...भाई तुम जिओ···सौ वर्ष की आयु लेकर···मेरी भी आयु ले लो...पर यह पाप न करो। घर से निकाल देंगे, अवन्ती चला जाऊँगा···किसी का साथ मिल जाने पर महाकाल की नगरी से विश्वनाथ की नगरी काशी चला जाऊँगा। पर माता तो इस धरती से [दोनों हाथ से आकाश की ओर रेखा बना देता है।]

दूसरा ऊँ···हूँ···कहूँगा मैं···जीभ से धरती चाटो, तब भी मुझे तो कहना है···

तीसरा तब तुम्हें मेरी माता की हत्या का पाप पड़ेगा···

दूसरा तुम्हारे पिता हम लोगों पर दिन में दस बार बोली बोलते हैं···इसलिए कि हम लोग हाथ पर कुश-अक्षत लेकर दान लेते हैं। अन्न, वस्त्र और द्रव्य के साथ देने वालों का पाप भी हमारे घर आता है। तुमने उनको भी अब हमारे बराबर कर दिया। अब तो एक कहेंगे···सुनेंगे दस।

तीसरा अच्छी बात, मैं चला जाता हूँ तब···मीमांसक से दान न लूँगा तब तो तुम कहोगे भी तो झूठ होगा।

दूसरा और पहले जो ले चुके हो···

तीसरा कब? किस दिन? कौन साक्षी बनेगा? झूठ पाप का मूल कहा गया है। यशस्वी मण्डन की इस पुरी में इतना कौन

नहीं जानता ? [पहले की ओर देखकर] क्यों भाई ! कोई बात अलीक कही हो तो कान पकड़ो। [सिर झुकाकर दायाँ कान उधर करता है।]

पहला देखो जी परिहास में झूठ पाप नहीं है, रमणी के अनुराग की बात हो···एक बार या सौ बार झूठ बोलो···सब पुण्य बन जायेगा। मीमांसक पण्डित से तुम कई बार दान ले चुके हो इसका साक्षी मैं पूरे आनन्द से बन जाऊँगा।

तीसरा [जैसे उसकी साँस रुक गई हो] पूरे आनन्द से···हे भगवान !

पहला कह तो दिया परिहास और रमणी के अनुराग में सौ बार झूठ बोलते हैं और यह सब पुण्य का फल देता है। पुण्य का फल केवल सुख है और इन दोनों में···परिहास और रमणी के अनुराग से बड़ा सुख मैं नहीं जानता। [मन्द हँसी]

तीसरा पर यहाँ दोनों में एक भी नहीं है।

पहला परिहास है···

तीसरा किसी का घर भस्म हो जाय, किसी कुल की मर्यादा डूब जाय···यह कैसा परिहास होगा जी ?

दूसरा जैसा होना चाहिए। तुम्हारे तात जैसे नन्दन वन के कल्प-वृक्ष के शिखर से हम लोगों की ओर देखते हैं, हम लोग जो धरती की धूलि में पड़े हैं और वे उस ऊँचाई पर होते हैं जहाँ हम अभागों की दृष्टि भी नहीं पहुँच सकती। दान लेने का कर्म भी ब्राह्मण का है यह अधर्म कैसे हुआ ?

पहला ओ ! हो ! तब कहो कि उनके···उनके अपराध का दण्ड तुम उनके पुत्र को दोगे !

दूसरा उनका···उनके पूरे कुल का दण्ड बन जायेगा यह। कल्प-

वृक्ष के शिखर से उतर कर वह भी धरती पर आ जायँगे जहाँ हम सब प्राणी हैं।

पहला नहीं भाई, तब मैं साक्षी...नहीं बनूँगा। इतनी बड़ी सिद्धि तुम परिहास से ले लेना चाहते हो? तपस्या से भी जो नहीं मिलती वह···

दूसरा न बनो साक्षी···मुझे यहाँ से चलते ही कहना है।

तीसरा धरती तब भी रहेगी और आकाश नहीं टूट पड़ेगा। न होगी यह बात सिद्ध···अपवाद तुम भोगोगे। परिवार के बड़े परस्पर क्या कहते हैं इसमें न पड़कर हम अपना व्यवहार बना लें। हम परस्पर लगने वाली बात कभी न कहें। आग आहुति से नहीं जल से बुझाई जाती है।

पहला सुनो एक बात मान लो तो मैं यह संकट टाल दूँ।

तीसरा इतने शब्दों में तो तुम वह बात कह गये होते।

पहला जिसके सुनने के लिये तुम्हारी दशा जल के निकट रेती में पड़ी मछली जैसी हो रही है।

तीसरा बिना अलंकार और व्यञ्जना के तुम वह बात कह दो अब···[उसकी ठुड्डी के नीचे हाथ की उँगलियाँ लगा देता है।]

पहला आज जो दान तुम्हें मिले, इन्हीं भाग्यमान को दे दो।

दूसरा हूँ···हूँ···तो मैं अब इनका दान लूँगा?

तीसरा तात ने कभी कुछ असावधानी में कह दिया होगा उसके प्रतिकार के सर्प का विष तुम पर चढ़ गया है। उनसे मैं आज ही मना कर दूँगा ऐसी बात अब कभी न कहें। मीमांसक का मैं शिष्य रह चुका हूँ। उनके महाशाल का द्वार मेरे लिए सदैव खुला है। उनसे विद्या दान लेना जब

मेरे भाग्य में नहीं था जिसका क्षय कभी नहीं होता तो दूसरा दान क्या लूँगा जो सबेरे लिया और संध्या को समाप्त।

पहला अच्छा तो तुम यहाँ इस समय आये क्यों ?

तीसरा राजा मीमांसक ने मुझे इस समय बुलाया था। तुम लोगों को देखकर यहीं अटक गया। नित्य के इस धर्म-संग्रह के बाद ही वे जो आदेश करें। मुझे जानते हैं वे और मेरे पहले मेरे कुल की परम्परा को भी जानते हैं। जिस क्षण मैं उनके सामने अर्थी बन कर खड़ा हूँगा···नीचे धरती फटेगी और मैं उसमें समा जाऊँगा।

दूसरा अच्छी बात, अब तुम अपना भय निकाल दो नहीं कहना है मुझे···

तीसरा तुम्हारे चित्त को गगन-विहारी बनाने के लिए मैंने भय का अभिनय किया था। आचार्य कुल में वेद और व्याकरण जो पढ़ा वह तो अब भूल गया···अभ्यास का फिर अवसर न मिला और बिना अभ्यास की विद्या टिकती नहीं। पर सदैव निर्भय रहने की... महिष पर बैठे यमराज के दर्शन में भी निर्भय रहने का संकल्प जो आचार्य के सामने लिया उसे न भूल सका। विधाता दूसरे जन्म में भी संस्कार रूप से वह मेरे भीतर रहने दे यही कामना है···इस जीवन में यह संकल्प अब क्या छूटेगा ? तुम्हारे चित्त में जिस कार्य से सुख आये तुम वह करो।

दूसरा हूँ···कमल के पत्ते पर पानी अब नहीं चढ़ रहा है तब तो मुझे वही···

तीसरा हाँ भाई तुम वही करो। नगर भर में कांस्य-कोशी बजाकर कह आओ माधव मीमांसक का दान ग्रहण करता है।

मीमांसक का दान देवता लेते होंगे, मनुष्य का क्या कहना है। विधाता का दान कौन नहीं लेता और कौन कहेगा कि आचार्य विश्वरूप इस युग के विधाता नहीं हैं?

[भवन में:शंख की ध्वनि होती है। दौवारिक सजग होकर खड़ा होता है। शंख की जगह उसके हाथ में बेंत का दण्ड है। मूँज के बने कई रंगों के तीन टोकरों में दान के लिए अन्न-द्रव्य लिए मीमांसक के अन्तेवासी आगे चलते हैं और पत्नी भारती के उत्तरीय से अपने उत्तरीय की ग्रन्थि बाँधे विश्वरूप भवन द्वार से बाहर आते हैं। याचक दान सामग्री और दाता दम्पत्ति के तीन ओर मण्डल बना लेते हैं। माधव सबसे अलग एक ओर खड़ा रहता है। याचक जय ध्वनि के साथ चले जाते हैं। दोनों ओर से मृग, मयूर और हंस के जोड़े आ जाते हैं। भारती उनके आगे अन्न रख देती है। अन्तेवासी पात्रों को लेकर भवन में चले जाते हैं।]

माधव [दोनों हाथ जोड़कर झुकते हुए] प्रणाम आचार्य! और भगवती आपको भी [दोनों के चरण छूता है।]

भारती चिरजीवी बनो पुत्र!

विश्वरूप यश मिले तुम्हें, विद्या तो तुमने ली नहीं।

भारती प्रियदर्शन के पूर्वजन्म के संस्कार में अलौकिक विद्या नहीं थी•••अलौकिक पत्नी थी•••पुत्र था। पुरुष को यश पुत्र से मिलता है। [मुस्कराकर] श्रुतिवाणी प्रमाण है, "हे अग्नि हम अपनी प्रजा के द्वारा अमरता प्राप्त करें।" विद्या के द्वारा अमरता की कामना श्रुति में कहीं नहीं है। विद्या

से अमरता मिलने की बात है पर उसके द्वारा अमरता की कामना···इस सृष्टि में प्राणी की जो कामना होती आई है वही श्रुति में भी है। इससे इतर यहाँ कुछ नहीं है।

विश्वरूप [हँसकर] तब तो देवी सभी ब्रह्मचारी विद्यार्थियों को इसी का उपदेश देंगी।

भारती ब्रह्मचर्य के अन्त में इसी का उपदेश श्रुति बराबर देती आई है। बिना इसके न कहीं लोक है और न लोक का धर्म।

विश्वरूप [माधव की ओर संकेत कर] प्रियदर्शन की पत्नी को तब देवी देख भी चुकी हैं।

भारती तीन बार आर्यपुत्र! गजदन्त और पद्मराग के मिलने पर जो रंग होगा वही रंग है उसका···हथेली, तलवे, अधर जैसे तामरस के हैं, आँखें इन्दीवर की···प्रियदर्शन लजा रहे हैं नहीं तो मैं उसका चित्र शब्दों में उतार देती।

माधव यह सब क्या कहने लगीं माता!

भारती रूपवती पत्नी भी भाग्य से मिलती है पुत्र! अपने भाग्य में लज्जा कैसी? यह सब पूर्वजन्म का अर्जित होता है। जब मैंने उसे देखा जैसे वह मेरी आँखों का उत्सव बनती गई। वैसी ही कन्या की कामना हर बार मेरे मन में खिलती रही।

विश्वरूप सच कह रही हैं देवी!

भारती कामना के साथ झूठ का संयोग कभी नहीं होता आर्यपुत्र! वह रूप, शील, हँसी में मल्लिका के फूल और आँखों के मोती मेरी दृष्टि में पहले नहीं आये। जहाँ तक स्मरण है मुझे···

[माधव भवन द्वार की ओर बढ़ता है।]

विश्वरूप [धीमे स्वर में] अपने वे दिन जो देवी स्मरण करें···

भारती [मुस्कराकर धीमें स्वर में] मेरे वे दिन आर्यपुत्र स्मरण करेंगे···किसी के वे दिन मुझे नहीं भूले···उसे मेरे वे दिन भी न भूले होंगे।

विश्वरूप माधव की पत्नी ऐसी सुन्दरी है! [विस्मय के भाव]

भारती उसे देखकर आप ब्रह्मा का उपकार मानेंगे कि उसने ऐसी सृष्टि कर दी। उसका शिशु भी उसी साँचे में ढला है। आप के और शिष्य अभी सूत्र रटते रह गये और माधव सब ओर से पूर्ण हो गया। [दोनों हँसते हैं।]

विश्वरूप यह भी तुम श्रुतिवाणी कह गईं···पत्नी और पुत्र से पुरुष पूर्ण होता है।

भारती जिसके पति के मुख से स्वप्न में भी श्रुतिवाणी निकलती है···उसकी दूसरी गति क्या है। जिसकी विद्या का यश दिगन्त को धवल कर रहा है उसकी पत्नी···

विश्वरूप सरस्वती रूपिणी है देवी! अगस्त्य की सरस्वती लोपामुद्रा थीं, याज्ञवल्क्य की सरस्वती गार्गी थीं, वशिष्ठ की अरुन्धती और तुम···हाँ तुम मेरी सरस्वती हो। बिना तुम्हारे मेरी वाणी शब्द-हीन है और हृदय भाव-हीन···

भारती [सिहर कर सामने की ओर हाथ उठाकर] आर्यपुत्र! उतने ऊँचे पर्वत से वह गज सीधे नदी की ओर उतर रहा है···हैं···हैं···लुढ़क कर कहीं नीचे आ जाय तो [भय में] दोनों साथ जायेंगे···गज और आरोहक दोनों ··[निर्निमेष उधर देखती रहती हैं।]

विश्वरूप गज नहीं है वह देवी! तुम्हारी सखी है वह। तुम्हारे चरण जैसे सधे ताल-गति में उठते हैं वैसे उसके भी उठ रहे हैं। अपने धर्म में जितनी सावधान तुम रहती हो, अपने धर्म में

वह भी उतनी ही सावधान है। स्वर्णतार खचित स्तवरक में नीचे मुक्ताजाल वाला आवरण, ऊपर रत्नजटित सोने की अम्बारी, ध्वज, चवर, घण्ट, शंख, कण्ठ में नक्षत्रमाला, मस्तक पर दीप्तिमान पट-बन्ध···

भारती तो यह नरगज नहीं है···

विश्वरूप नारीगज है यह देवी···नर में पर्वत से सीधे उतरने की कला नहीं आयेगी। सरस्वती की वाहन बन कर आ रही है यह···इस पर बैठकर सरस्वती अपने पुत्र के साथ नदी, पर्वत के दृश्य देखा करेंगी।

भारती ऐं···काव्य की इस वाणी का अर्थ है कि यह आर्यपुत्र की सेवा में आ रही है। किसी प्रतापी नरेश ने इसे यहाँ भेजा है।

विश्वरूप मेरी सरस्वती के मनोविनोद के लिए···

भारती अकेली भले चली जाऊँ पर तीन वर्ष के एक मात्र पुत्र के साथ कभी नहीं·· जिसके सहारे [सब ओर हाथ घुमाकर] इस भवसागर को पार करना है। ऐसी सरलता से कह गये जैसे इसमें कोई भय न हो।

विश्वरूप कहा तो वह देवी की सखी है···उससे कहीं चूक न होगी।

भारती कण्ठ की नक्षत्र माला में सत्ताईस रत्न होंगे। नक्षत्र संख्या में सत्ताईस हैं।

विश्वरूप हाँ सत्ताईस दुर्लभ मोती बड़े आमलक के बराबर···बीच में नीचे नाग-मणि···

भारती तब तो यह संख्या अट्ठाईस हो जायेगी।

विश्वरूप केवल सत्ताईस मोती ही दिखलाई पड़ेंगे। नागमणि को देखने के लिए उसके अगले दोनों पैरों के बीच में जाना

होगा । पिछली एकादशी को अवन्ति-नरेश का दूत आया था ।

भारती हाँ···आज पूर्णिमा है पाँचवें दिन सखी पहुँच भी गई। [हँसने लगती है ।]

विश्वरूप मैंने तो उसका नाम उसी दिन सखी रख दिया। महाराज को पत्र में लिख दिया वह देवी की सखी बन कर रहेगी ।

भारती भला मेरी बात उन्हें लिखने की क्या पड़ी थी ? पत्नी की बात पति तक रहे···सूर्य और चन्द्र भी कुछ न जानें दूसरों की बात क्या···

विश्वरूप माधव से देवी ने अभी कहा कि पत्नी पति की भाग्य रेखा होती है और ऐसी पत्नी जिसकी विद्या देश भर में छा गई है। दौवारिक !

दौवारिक [आगे बढ़कर] सेवक को आदेश दें स्वामी ।

विश्वरूप देवगुरु को ले आओ। माता-पुत्र इसी समय इस दिव्य करिणी पर बैठें···

माधव मैं ले आ रहा हूँ तात !

विश्वरूप ले आओ तुम्हीं···देवगुरु तुम्हारा अनुज है। तुमसे अधिक उसकी रक्षा कौन करेगा ?

माधव गुरुपुत्र में भी मुझे गुरुभाव ही मिलता है तात ! मेरे साथ जब खेलते रहते हैं उनके दोनों चरण मैं अपने ललाट पर रखकर तृप्त होता हूँ ।

विश्वरूप गुरुभाव से नहीं जी···देव भाव से। तीन वर्ष तक बालक में देव भाव कहा गया है। माता-पिता भी उन चरणों को अपने ललाट से लगाकर तृप्ति लेते हैं। कल से उसका देव

भाव मिट जायेगा, कल उसका चौथा वर्ष दिन है। कल से वह तुम्हारा अनुज बन जायेगा।

माधव यही होगा तात ! अब तक उनका हाथी मैं बनता आया अबसे···

विश्वरूप तुम्हारे कारण ही वह करिणी महाराज ने भेजी है···

माधव मेरे कारण तात !

विश्वरूप गतवर्ष बिना किसी पूर्व सूचना के अवन्ति-नरेश, जो मुझे दर्शन देने आ गये ··

माधव देने नहीं तात आपका दर्शन लेने आये वे···

[**भारती हँसने लगती है।**]

विश्वरूप तुम वाचाल हो···तुम हाथी की भाँति हाथों और घुटनों के बल चल रहे थे, देवगुरु तुम्हारी पीठ पर किलक रहा था, महाराज ने कह दिया बालक की आयु अब हाथी पर बैठकर नदी, पर्वत में दृश्य देखने की हो गई है। यह जानकर कि अपने पाँच हाथियों में बालक के विषय में मुझे किसी का विश्वास नहीं है, मेरे यहाँ उनकी पहले की सारी कला और शिक्षा का लोप हो गया है।

भारती इस करिणी का दान आप को तभी मिल गया।

विश्वरूप दान मैं कभी नहीं लेता देवी ! पुरस्कार मेरी मर्यादा के अनुरूप जहाँ मिला मैंने लिया। उस समय तो वे मुस्कराकर मौन हो गये, पर उनकी आँखों की ज्योति में मुझे देख पड़ा कि वे कोई निरापद गज देने का संकल्प कर चुके हैं।

भारती पर्वत से नीचे उतरकर···नदी पार कर···इधर के पर्वत पर चढ़कर···देखें आर्यपुत्र ! मेरी सखी चली आ रही है। गति में वेग है पर देह हिलती नहीं···पैर का उठना दिखाई नहीं

पड़ता···उड़ी चली आ रही है जैसे बिना पंख के··· माधव !

दौवारिक वे तो चले गये भीतर देवी !

भारती अब तुम चले जाओ···रेवती से कहो आरती की सामग्री, सिन्दूर और मोदक लेकर तुरन्त आये। मोदक का पात्र पूर्ण रहे।

दौवारिक अच्छा देवी ! [**दौवारिक का प्रस्थान**]

भारती सखी की पूजा-आरती करनी होगी पहले, सिन्दूर लगा कर मुँह में मोदक देना होगा।

विश्वरूप गणेश की पूजा जिस विधि से की जाती है देवी ! गज में गणेश का अंश कहा गया है। मोदक मुँह में न देना होगा। पात्र लेकर तुम खड़ी रहोगी वह अपनी रुचि से उसी में से निकाल कर अपने मुँह में ले लेगी।

भारती इतने निकट उसके कैसे रहूँगी सूँड़ हिला दे···कहीं लग जाय तब तो धरती धर लूँगी।

विश्वरूप तनिक भय न करना देवी···सखी का विश्वास उसे दो, फिर देखो वह कितनी सेवा तुम्हारी करती है।

[विश्वरूप और भारती एक टक करिणी की ओर देखते रहते हैं। विश्वरूप श्वेत अंशुक का उत्तरीय और अधो-वस्त्र पहने हैं। उत्तरीय के ऊपर दूसरे चित्रित वस्त्र की गात्रिका ग्रन्थि है। भारती का उत्तरीय और अन्तरीय पीला है। भारती के कानों में त्रिकण्ट और ललाट के ऊपर केश में मकरिका लगी हैं। जूड़े में मालती की मौलिमाला पड़ी है। माधव शिशु देवगुरु को उठाये आता है जिसकी आँखों में नींद के लक्षण हैं। ललाट

पर कस्तूरी का तिलक, गले में एकावली और कटि में मेखला पड़ी है। कटि में झीना चण्डातक है, कन्धे से कटि तक वैकक्ष है।]

भारती [शिशु को हाथों में लेकर उसका मुख चूमते हुए] आ! हा! देखो, वह देखो तुम्हारी मौसी आ रही हैं। बालक हथिनी की ओर ध्यान से देखता रहता है। रेवती सामग्री कन्धे पर उठाये खड़ी है। हथिनी जब सामने दस पग पर आ जाती है आरोहक रोकता है और विश्वरूप को हाथ जोड़कर देह झुका कर प्रणाम करता है।

आरोहक प्रणाम देवता! [बालक की ओर देखकर] बाल भगवान् को इधर करें यह फूल की तरह सूँड़ से उठा कर मुझे दे देगी।

भारती अरे! नहीं…इस तरह नहीं [हथिनी सूँड़ हिलाने लगती है।]

आरोहक [हथिनी को पैर से संकेत कर] प्रणाम कर आर्य को और भगवती को! [हथिनी अगले दोनों पैर मोड़कर सूँड़ धरती पर रख देती है।]

भारती देवगुरु को लो आर्यपुत्र! मैं इसी तरह आरती कर लूँ। उठ तो नहीं जायेगी आरोहक!

आरोहक नहीं देवी! कहें तो दिन भर ऐसी ही बनी रहे। [भारती की ओर देखकर] तनिक न डरें देवी! अपने घर की बिल्ली समझें इसे।

[भारती के संकेत पर रेवती सामग्री लेकर उसके पास आ जाती है। भारती आरती कर हथिनी के मस्तक पर सिन्दूर की रेखा में कमल का चित्र बनाती है।]

भारती मोदक भी ऐसे ही ले लेगी आरोहक !

आरोहक सूँड़ ऐसे नहीं मुड़ेगा देवी ! [पैर से संकेत करता है, हथिनी सीधे खड़ी होती है ।] चली आयें देवी···और आगे···भय की कोई बात नहीं है।

[भारती मोदक-पात्र दोनों हाथों में उठाये सहमती-सी आगे बढ़ती है । बालक विश्वरूप की गोद में चौंककर डर जाता है ।]

देवगुरु माँ···काटे···काटे···

विश्वरूप तुम्हारी मौसी है वह, न डरो···

आरोहक [हँसकर] किसी जन्म में इसने कोई बड़ा पुण्य किया कि देवी की बहन बन गई । [हथिनी पात्र में से मोदक निकाल कर आरोहक की ओर सूँड़ उठाती है । आरोहक झुक कर ले लेता है ।] गिन कर पाँच मुझे दिया है आर्य ! [हथिनी को पैर से संकेत कर] बस अब तुम लो मुझे नहीं चाहिए ।

[हथिनी रुचि और विश्वास से मोदक उठा कर अपने मुँह में डालती रहती है । दो बार सूँड़ से भारती का शीश छू देती है ।]

भारती मुझे फिर नहाना पड़ेगा अच्छी सखी निकली ।

विश्वरूप देवी के सिर पर कुछ लगा नहीं । केवल मौलि माला सूँघ लिया इसने । [मन्द हँसी]

[हथिनी सूँड़ खींच लेती है । पात्र में अभी थोड़े मोदक रह जाते हैं ।]

भारती [पात्र को देखते हुए] अब न लेगी आरोहक ! इतने थोड़े भी न ले सकी ।

आरोहक आपके प्रेम से इस समय यह तृप्त है। नित्य आपके हाथ से ऐसे ही मोदक लेना चाहेगी जिस दिन आपके हाथ से नहीं पायेगी इसकी आँखों से आँसू निकलेंगे।

भारती एक ही क्षण में आरोहक···

आरोहक हाँ देवी···! मोदक के साथ उसे आपका स्नेह मिला है। बोल नहीं सकेगी यह पर अनुभव तो इसे वही है जो हम लोगों में है।

भारती तब तो मेरा यह नया बन्धन बना···पति, पुत्र, हंस, मयूर, हरिण-युग्म, गृह पत्नी और अब यह हथिनी भी···

विश्वरूप देवी नित्य नये बन्धन जो चाहती हैं।

भारती नारी की, प्रकृति की, माया की यही वृत्ति है आर्यपुत्र !

विश्वरूप हाँ देवी···[बालक भारती की ओर बाहें पसारता है और हँसने लगता है।]

भारती [बालक को लेकर] पण्डित जन कहते हैं यह सब मोह है पर जीवन भी यही है। भाव के रस में रमे रहने पर···जगत् ध्रुव है या नहीं है·· इसे देखने का अवसर कहाँ है ?

विश्वरूप [हँसकर] कहीं नहीं है ?

भारती कहीं नहीं···हो असत्य जगत···भले हो···पर भाव असत्य नहीं है। ओठों की हँसी, आँखों के आँसू, हृदय की गति और देह की सिहरन और ऐसा वह सब जो हम अनुभव करते हैं जो हमारे प्राण के भोग हैं, उसे असत्य कहना चित्त की विकृति और बुद्धि का उन्माद होगा।

विश्वरूप [भारती के कन्धे पर हाथ रखकर] सरस्वती अब अधिक मुखर न बनें···

भारती [जैसे सँभलकर] हाँ···तो···

विश्वरूप आरोहक ! तुम्हारा नाम क्या है ?

आरोहक मधुकर कहते हैं स्वामी !

विश्वरूप म···धु···कर···नाम तुम्हारा सरस है तो अब तुम सखी को राजशाला में ले जाओ···विश्राम करो, इसे आहार दो···

मधुकर अभी नहीं ··देवी और पुत्र के साथ आप इस पर बैठने का मुहूर्त भर कर लें। फिर तो इस सेवक को आप बार-बार कृतार्थ करेंगे। अवन्ति नरेश ने कहा था, "सखी को माहिष्मती ले जाओ। पूनो को वहाँ अवश्य पहुँचना है।" विश्वास न होगा आपको इसके ऊपर जब मुझे नींद आ गई यह ठीक मार्ग पर चलती रही। किसकी सेवा में कहाँ जाना है ? जैसे यह पहले से ही जानती थी। बीहड़ बन-पर्वत में मैं सन्देह में पड़ गया, कई बार इसे दूसरी ओर मोड़ा पर यह हठपूर्वक ठीक मार्ग पर घूमकर आती रही, जिधर बाघ की गन्ध मिली वह मार्ग छोड़ती चली। धर्म से कहना तो यह होगा स्वामी···आपके चरणों में मुझे यह ले आई है नहीं तो मैं कहीं भटक गया होता।

विश्वरूप [उसकी सूँड़ को हाथ से थपथपा कर] पशु का स्वाभाविक ज्ञान मनुष्य से अधिक होता है। गज का तो सबसे अधिक। आँधी आने को होती है वन्य जीव भाग कर रक्षा भूमि में पहुँच जाते हैं। ओले गिरने को होते हैं उन्हें इसका बोध बहुत पहले हो जाता है और वे उन उन स्थानों में जा पहुँचते हैं जहाँ उनकी रक्षा हो जाती है।

भारती वाणी और विद्या के अधिकारी मनुष्य को तब तक पता नहीं चलता जब तक आँधी सिर पर नहीं आ जाती या ओले देह पर गिरने नहीं लगते। बुद्धि बढ़ती गई, निसर्ग-बोध

मिटता गया। प्रकृति जी रही है···उसके अन्य सभी प्राणी जी रहे हैं पर क्या मनुष्य भी जी रहा है ?

मधुकर यह सब बाप-दादे कभी नहीं जान सके माता! सात पीढ़ी इसी काम में बीत गई। हाथी के ऊपर, बन में, पहाड़ में, नदी की धार में, चारा काटने में और अधिक तो उसी की पीठ पर सो जाने में, इसके आगे कहाँ क्या है सेवक के कुल में कोई कभी नहीं जान सका। महाराज ने कहा था पहले इस अम्बारी में आप लोगों को बैठा कर नगर भर की परिक्रमा मैं कर लूँगा तब इसकी पीठ से यह सब उतरेगा।

विश्वरूप महाराज की कामना पूरी हो। दर्शकों की आँखों का भी यह उत्सव होगा। महाराज की कीर्ति बढ़ेगी। पुत्र को लेकर आप अम्बारी में बैठ जायँ। माधव! तुम भी देवी के साथ रहोगे।

भारती यज्ञ में, अग्निहोत्र में, दान में, सभी पर्व और उत्सव में, मैं सदैव साथ रही आज अकेली···

विश्वरूप कहीं कुछ घटित हुआ है जिसकी सूचना मुझे मिलने वाली है। मन में प्रतिपल ऐसा ही बोध हो रहा है देवी। अन्तःकरण की प्रवृत्ति प्रमाण बन रही है और क्या कहूँ।

भारती कालिदास की वाणी है यह आर्यपुत्र! जो शकुन्तला के प्रथम दर्शन में दुष्यन्त के कंठ से निकली थी।

विश्वरूप यह सारा जगत व्यास का, बाल्मीकि का उच्छिष्ट है। कालिदास ने उन्हीं से लिया। इस देश की मेधा उन्हीं से बराबर लेती रहेगी। जगत का स्वाद जो उन्हें मिला था, सृष्टि-दर्शन और जीवधर्म का स्वाद था। उनके दर्शन में जो न आया अब फिर किसी दूसरे के दर्शन में आयेगा भी नहीं।

भारती उनसे कुछ छूटा जो नहीं। उनसे अपरिचित न तो किसी स्वाद की सत्ता है न किसी दर्शन की।

विश्वरूप बैठाओ इसे मधुकर! माधव! गुरुदेव के साथ तुम नगर की परिक्रमा कर आओ!

भारती [भय में] आर्यपुत्र!

विश्वरूप अवन्ति नरेश की कामना पूरी होने दो देवी! गुरुदेव में हम दोनों समा गये हैं। जब हम न रहेंगे तब भी उसके रूप में जीवित रहेंगे। माधव!

माधव क्या आदेश है तात!

विश्वरूप कमलेश्वर के मन्दिर द्वार पर उतर कर इसे भगवान का दर्शन करा लेना।

माधव अच्छा तात! पूजा की सभी सामग्री वहाँ मिल जायेगी।

भारती सावधान रहना सौम्य···

मधुकर आपकी सखी जितनी सावधान रहेगी देवी! उतनी आप भी न रहतीं। सेवक का अपराध क्षमा हो।

भारती बालक को उठाकर वह तुम्हें दे देगी?

मधुकर फूल की तरह देवी! किसी दिन आप को मैं दिखा दूँगा यह भी···आज बैठा रहा हूँ आप अपने हाथ अम्बारी में रख दें।

[पैर के संकेत से हथिनी को बैठाता है। माधव पहले अम्बारी में पहुँच जाता है।]

माधव अब दें माता मुझे···

[भारती बालक के साथ आगे बढ़ती है।]

विश्वरूप वाहन पर पिता के हाथ पुत्र बैठता है देवी! **[भारती के हाथ से लेकर गुरुदेव को माधव के हाथ में दे देते हैं।]**

मधुकर [घूमकर हाथ से संकेत करते हुए] हाँ···आप यहाँ मेरी ओर आगे मुँह कर बैठें और बाल भगवान को अपने आगे···[हथिनी उठती है। आरोहक के संकेत पर विश्वरूप और भारती को सूँड़ की गति में प्रणाम की मुद्रा बनाती है। दोनों एक साथ हँसते हुए उसकी सूँड़ पर स्नेह से हाथ फेरते हैं।]

भारती अब तू मेरी बहन और मेरे पुत्र की मौसी बन गई। कोई चूक न होने देना। [हथिनी सिर और कान की गति से जैसे आश्वासन देती है।] आर्यपुत्र! देखें···सब समझ कर हमें आश्वासन दे रही है। वाणी होती तो···

विश्वरूप तब यह बोध नहीं होता देवी! तब इसे भी छल आ जाता।

भारती छल आ जाता? शब्द ब्रह्म है। [ध्यान से विश्वरूप की ओर देखती है।]

विश्वरूप शब्द ब्रह्म है···अक्षर ब्रह्म है···उसी शब्द और अक्षर से लोक छल भी करता है। शब्द ब्रह्म तब है जब उसके प्रयोग में श्रद्धा का भाव रहे। बिना श्रद्धा के शब्द ब्रह्मराक्षस बन जाता है।

भारती [सामने देखकर] किधर चली गई? उड़ गई क्या?

विश्वरूप माता बन जाने पर सरस्वती भी अधीर हो जाती हैं।

भारती पुत्र के अनुराग में···वह अनुराग सूर्य है आर्यपुत्र! जिसकी किरणों में ज्ञान का हिम गल जाता है।

विश्वरूप अब चन्द्रशालिका में चलें देवी! किसी संकट की, किसी अवांछित घटना की सूचना जैसे मिलने वाली हो और और चित्त उसके पहले ही अधीर हो जाय!

[भारती का हाथ पकड़कर भवन द्वार की ओर बढ़ते हुए]

भारती तब पुत्र को नहीं जाने देना था।

विश्वरूप हमारे पुण्य अभी क्षीण नहीं हैं देवी! उसकी चिन्ता मुझे नहीं है।

[दोनों भवन में अदृश्य हो जाते हैं। रेवती प्रवेश कर दौवारिक के सामने खड़ी होती है।]

दौवारिक [मुस्कराकर] कहाँ चली?

रेवती तुम क्यों नहीं गये? [सिर झुकाकर धरती पर पैर का अँगूठा हिलाने लगती है।]

दौवारिक कहाँ भेजना चाहती हो···

रेवती नगर घूमने···इस नई हथिनी पर···गये होते तुम्हारी कुण्डली का राजयोग पूरा हो जाता। [मन्द हँसी]

दौवारिक स्वामी को छोड़कर देवी नहीं जा सकीं तो भला तुम्हें छोड़कर···

रेवती देखो जीभ से पानी न गिरने लगे···मुझे छोड़कर तुम कैसे जाते···लगता है मेरे कपड़े से अपने कपड़े की गाँठ देकर यह भी लोगों को दान देंगे। [आँखें नचाकर सिर हिलाती रहती है।]

दौवारिक कोई देख लेगा तब···

रेवती क्या कर रहे हो ऐसा जो दूसरे नहीं करते···कहकर हार गई···सुनते नहीं···दिन बीते जा रहे हैं···पहाड़ के किनारे कहीं कुटी बना लेते···भगवान किसको भोजन नहीं देता? चींटी कहाँ खेती करती है? कागा कहाँ बनिज करता है? जिलाने वाला न चाहे तो अपने से कौन जी लेगा?

वाले दर्पण हैं जिनमें परस्पर प्रतिबिम्ब के कारण एक आकृति अनेक आकार ले रही है। एक ओर तीन चौकियाँ समान आकार-प्रकार की जोड़ कर रक्खी हैं जिन पर नीचे वाले आस्तरण के ऊपर श्वेत मणांशुक है और आस्तरण की अनेक रंगों की कला ऊपर भी प्रतिभासित हो रही है। सामने कई भद्रपीठ विभिन्न कलात्मक निर्माण के द्योतक हैं। विश्वरूप चौकी पर बैठते हैं। भारती कभी आगे के किसी स्तम्भ के किनारे खड़ी होती है और सामने के पथ की ओर देखती है कभी चन्द्रशालिका में चली जाती है।]

विश्वरूप तुम्हारी यह दशा है देवी ! क्षण मात्र भी तुम एक स्थान पर नहीं टिक रही हो।

भारती प्राण पुत्र के साथ···भवन घूम रहा है···धरती घूम रही है···आकाश घूम रहा है। तुम्हें कुछ नहीं अनुभव होता ! [उत्सुक होकर उनकी ओर देखती रहती हैं।]

विश्वरूप [मुस्कराकर] देवी के पुण्य की भाँति मेरा चित्त स्थिर है, यह भवन स्थिर है, धरती भी, आकाश भी···

भारती यह भी नहीं सूझा कि कुछ आहार की सामग्री रख दी जाती। भूख लगे···मुझे खोजने लगे···रोकर···उँह··· अशुभ शब्द मुँह से निकाल रहा था।

विश्वरूप [भारती की ओर देखते हुये जो इस समय फिर आगे के स्तम्भ के पास खड़ी होकर पथ की ओर देख रही हैं।] मीमांसक मण्डल और देवी के पुत्र को आहार पग-पग पर मिलेगा देवी ! देखना वह हम लोगों के लिये भी आहार की ढेरी ले आयेगा।

भारती [वहीं से] कहाँ से ? इसी आयु में उपार्जन करेगा ?

दौवारिक पाँच बरस का जब था···अनाथ···आगे-पीछे कोई नहीं··· यहाँ शरण मिली···तीस बरस यहाँ बीते और तुम्हारे साथ भाग कर पहाड़ के किनारे कुटी बनाऊँ···किसी रात बाघ आकर दोनों को [दोनों हाथों से चीर देने का अभिनय करता है।]

नेपथ्य में रेवती ! अरी रेवती !

रेवती बज्र पड़े। रात को किवाड़ बन्द हो जाता है···दिन में भी किसी के साथ दो बात कर जी जुड़ाने में काल पड़ जाता है।

दौवारिक देवी बुला रही हैं···जाती है कि···[दाँत से अपना निचला ओठ दबाता है।]

रेवती लो जा रही हूँ···बीच सीढ़ी में गिर पड़ूगी···तुम्हीं बुलाये जाओगे मुझे उठाने के लिये। घाव लग जाने का···हड्डी टूट जाने का बहाना बनाकर धरती पर पैर रोपूँगी नहीं···फिर तो तुम मुझे उठाकर ले ही जाओगे···

दौवारिक अरे रे ! नरक में जायेगी नरक में···देवी के साथ छल करेगी नरक में जायेगी।

रेवती पुरुष सब सरग में जाते हैं···हमारी जैसी सब···कोई नहीं बचती···सब नरक में जाती हैं। इसी धरती पर भेंट हो जाती है। वहाँ तो सब अलग-अलग सरग में नरक में रहते हैं।

दौवारिक [बायें हाथ से उसका जूड़ा पकड़ कर खींचता है और दायें से उसकी पीठ पर धीरे से मारने का अभिनय करता है। वह हँसती हुई भीतर भागती है।]

[भवन के ऊपर चन्द्रशालिका में सब ओर विभिन्न मुद्रा और भाव भंगी में, नारी आकृतियाँ भित्तिचित्रों में बनी हैं। इन चित्रों के बीच-बीच में सुनहले किनारे

भारती [नेपथ्य में] इसकी बात न सुनकर तुम इसे यहाँ से ले जाओ।

दौवारिक [नेपथ्य में] कहाँ देवी ?

भारती [नेपथ्य में] अपने कक्ष में जहाँ तुम रहते हो। अपने पलँग पर इसे सुलाकर···किसी वैद्य को बुला लेना···कहना मीमांसक ने बुलाया है। [दोपहर के घण्टे बजने लगते हैं] लो तुम्हारा समय भी अब हो गया। दूसरा दौवारिक अब द्वार पर आ ही जायेगा। मेरे मुँह की ओर न देख कर इसे उठा ले जाओ।

दौवारिक [नेपथ्य में] इतनी दूर इसे उठाकर···गजशाला के परे मन्दुरा ओर तब हम सेवकों के कक्ष···पाँच वर्ष की आयु से यहीं हूँ। भार ढोने का अवसर तो अब तक न आया था।

भारती [नेपथ्य में] तुम्हारे साथ इसकी गाँठ कस कर बाँध दी जाय तब तो इसे बाँहों के हिंडोले में झुलाओगे।

दौवारिक [नेपथ्य में] इस भुजंगिनी के साथ मेरी गाँठ ? कितने दिन फिर जीता रह सकूँगा।

भारती [नेपथ्य में] जितने दिन भुजंगिनी के साथ भुजंग जीता है।

दौवारिक [नेपथ्य में] देवी परिहास कर रही हैं।

भारती [नेपथ्य में] नहीं जी···इसकी गाँठ मैं तुम्हारे साथ अपने हाथ बाधूँगी। यह बात मुझे पहले सूझी होती तब तो बिना मेरे कहे तुम इसे वैसे उठा ले गये होते जैसे लोग फूल की माला उठा लेते हैं। [देर तक हँसी गूँजती रहती है। विश्वरूप स्तम्भ के पास खड़े हैं। द्वार पर दूसरा दौवारिक आ जाता है। पहला दौवारिक रेवती को उठाये द्वार के बाहर होता है बायें घूम जाता है।]

विश्वरूप तुम्हारी सखी ऐसे वस्त्राभरण के साथ उसी का उपार्जन है। अवन्ति नरेश ने उसी के लिये भेजा। इस नगरी के गृहस्वामी भी तुम्हारे पुत्र को आहार के साथ कितने उपहार देंगे लौटने पर देखना। [सीढ़ी पर रेवती के गिरने की ध्वनि के साथ उसके कण्ठ से निकली आर्त्तवाणी सुनाई पड़ती है।] रेवती गिर पड़ी देवी और अब रो भी रही है।

भारती इसके गिरने का लग्न मुहूर्त भी यही था। [प्रस्थान]

रेवती [नेपथ्य में] टूट गया। हाय! पैर टूट गया।

भारती [नेपथ्य में] क्या टूट गया रे···

रेवती [नेपथ्य में] हाय! हाय! अरे दैया···टिक नहीं रहा है··· धरती पर टिक नहीं रहा···है···झूठ कहूँ तो आँख फूट जाय···जीभ गिर जाय!

भारती [नेपथ्य में] दौवारिक! हे! हे दौवारिक!

दौवारिक [भवन द्वार से मन्द हँसी] आया देवी!

भारती [नेपथ्य में] इसे उठाओ···उठाओ इसे···

दौवारिक [नेपथ्य में] रहने दे देवी! छोड़ दें यहीं···इसकी आँख फूटी नहीं है···टप···टप पानी गिरा रही है। देखकर नहीं चलती।

रेवती [नेपथ्य में] तुम पहाड़ से नदी में गिरो···

दौवारिक [नेपथ्य में] सुन रही हैं? क्या कह रही है यह···पहाड़ से नदी में गिरूँगा तो इसे कौन उठायेगा?

रेवती [नेपथ्य में] भगवान किसी को भेज देंगे···

दौवारिक [नेपथ्य में] बुला ले किसी को अभी···जिधर चलायेगी भगवान उधर ही चलेंगे।

के अपूर्ण है और यही गति नारी की भी है। श्रुति वाणी सब के लिये समान होती है।

भारती भवन के उस ओर के वातायन से अपनी आँख से देख लिया, ओट में पहुँचते ही उस दौवारिक के हाथों से उतर कर नीचे खड़ी हो गई। आँखें नचाकर हँसती हुई उसके कक्ष की ओर भाग गई। सीढ़ी पर पैर न टिकने का जो स्वाँग करने लगी। [हँसकर] देखो तो यह दासी मुझे ठग गई।

विश्वरूप देवी उन दोनों को अब उस सूत्र में बाँध दें। क्रोध नहीं दया करें, जितना बन पड़े।

भारती उन दोनों की गाँठ बाँधने की बात तो वहीं मेरे मुख से निकल गई। उसकी चतुराई और अपने भोलेपन पर मुझे हँसी आ रही है। यह कौन आ रहा है ?

विश्वरूप हम लोग अब भीतर चलें। अभी पता चल जायेगा।

[दोनों चन्द्रशालिका में भीतर आ जाते हैं। विश्वरूप भद्रपीठ पर बैठते हैं, भारती चौकी पर। आगन्तुक दौवारिक से कुछ कहता है और दौवारिक ऊपर चन्द्र-शालिका में प्रवेश करता है। आगन्तुक की कटि में चण्डातक कसा है। कन्धे से कटि तक वैकक्ष्य है। भवन की ओर विस्मय से देखता रहता है।]

दौवारिक प्रयाग से ब्राह्मण बटु संदेश लेकर सेवा में आये हैं।

विश्वरूप आदर से ले आओ।

[दौवारिक प्रणाम कर चला जाता है।] किसका सन्देश होगा ?

भारती दैव जाने। अग्रज कुशल से तो हैं। [चिन्तित हो उठती है।]

दूसरा इसे कहीं चोट तो नहीं लगी है जी···[मुस्करा कर उसकी ओर देखता है]

पहला [हाँफते हुए] बोला नहीं जाता भाई···साल भर की हथिनी ऐसी भारी न होगी। [दूसरा हँसता है।]

दूसरा होगी यह बीस-बाइस साल की···

रेवती [कराहकर] देखो बोली न बोलो···

दूसरा अरे चल! स्वामी ब्रह्मा के अवतार कहे जाते हैं। स्वामिनी को लोग देवी सरस्वती कहते हैं। धरती की लीला वह लोग क्या जाने?

[दूसरे द्वारपाल की आँख की ओट में पहुँचते ही रेवती धरती की ओर पैर झुकाती है।]

रेवती छोड़ अब नहीं देखेगा। [धरती पर उतर कर] अब पहाड़ के किनारे कुटी नहीं बनेगा। ठीक न।

दौवारिक [सब ओर हाथ घुमाकर] अब तो यह सब तुम्हारा बन गया। न खूँटा न रस्सी, चरो जितना चर सको।

रेवती तुम मुझे गाय बना रहे हो कि भैंस···[हँसती हुई अदृश्य हो जाती है।]

भारती [चन्द्रशालिका के सामने प्रवेश कर स्तम्भ के पास विश्वरूप को ध्यान से देखती हुई] आर्यपुत्र। इस रेवती ने केवल स्वाँग किया था। चोट नहीं आई थी इसे। दौवारिक उसे उठाकर ले जाय उसके ससंर्गक सुख उसे मिले।

विश्वरूप देही की यह कामना निसर्ग से मिली है देवी! उस पर अंकुश उतना ही रहे जो असह्य न हो। पुरुष बिना नारी

भारती अग्रज ने स्वयं शंकर से दीक्षा ली और आर्यपुत्र से शास्त्रार्थ के लिये भेज दिया ? तुम्हारा नाम ब्रह्मचारी !

ब्रह्मचारी श्रुतिकेतु माता !

भारती वही शंकर जो आठ वर्ष की आयु में ही वेद-वेदान्त में पारंगत होकर संन्यासी बन गये थे। इसी माहिष्मती के आगे अपने गुरु गोविन्द की गुफा द्वार पर अभिमंत्रित घट में नर्मदा के जल प्रवाह को जिसने रोक दिया।

श्रुतिकेतु प्रयाग में उनके शिष्यों से ऐसे अनेक चमत्कार सुनने को मिले माता !

विश्वरूप कैसे चमत्कार पुत्र !

श्रुतिकेतु काशी में भगवान शंकर ने उन्हें स्वयं दर्शन देकर ब्रह्मसूत्र पर भाष्य बनाने को कहा और उत्तर काशी में व्यास गुफा के निकट ब्राह्मण वेश धारी व्यासदेव को शास्त्रार्थ में सन्तुष्ट कर उनके द्वारा अपने भाष्य की श्रेष्ठता उन्होंने स्वीकार करा ली।

विश्वरूप हा···हा···हा···यह बाल ब्रह्मचारी शंकर चित से कवि है।

भारती कवि होने से क्या बना आर्यपुत्र ?

विश्वरूप कवि सभी वेदान्ती होते हैं। बाहरी जगत को भी वे हृदय की···भाव की आँखों से देखते हैं। वाल्मीकि, कालिदास सभी वेदान्ती रहे। वेदान्त का आनन्द उनके काव्य का रस बना। यह सृष्टि उनके लिए देवता का काव्य है।

भारती श्रुतिसृष्टि को देवता का काव्य कहती है।

विश्वरूप कहती है श्रुति देवी ! यही बात···देवता के काव्य के अनुरूप कवि अपने काव्य की रचना करते हैं। शंकर कवि हैं भाव में उन्हें भगवान शंकर और व्यासदेव का साक्षात्कार मिला

विश्वरूप भट्ट कुमारिल की चिन्ता में रहने के कारण उस राज हस्तिनी पर मैं नहीं बैठा। [भारती का शरीर काँपने लगता है। दौवारिक के साथ बटु प्रवेश करता है।] कहाँ से आ रहे हो ब्रह्मचारी इस वेश में ?

ब्रह्मचारी प्रयाग से। आचार्य भट्टपाद के प्रधान शिष्य प्रभाकर मिश्र ने मुझे सेवा में भेजा है। [भारती की ओर हाथ जोड़ कर] प्रणाम भगवती और आचार्य आप को भी··· [भोजपत्र पर लिखा पत्र निकाल कर विश्वरूप को देता है।]

विश्वरूप [पत्र खोलकर] भट्ट कुमारिल दिवंगत हो गये···

भारती किस दिन आर्यपुत्र ! पिता का स्नेह उन्हीं से मुझे मिला था। विद्या की रुचि उन्हीं से मिली। [कण्ठ भर आता है। आँखें मूँद लेती है। दोनों ओर कपोल पर आँसू की रेख बन जाती है।]

विश्वरूप तुम्हारे अग्रज के देहावसान से भी बड़े संकट की बात आगे है।

भारती [जल में डूबी आँखें खोलकर] अब क्या सुनना पड़ेगा आर्यपुत्र ?

विश्वरूप बाल संन्यासी शङ्कर मेरे साथ शास्त्रार्थ को आ रहे हैं। शास्त्रार्थ में जीत कर मुझे संन्यास की दीक्षा देंगे। कर्म के मार्ग से मुझे संन्यास के मार्ग पर जाना होगा। भट्ट कुमारिल ने अपने अन्त समय में शङ्कर से अद्वैत की दीक्षा ली और उन्होंने शंकर को मेरे साथ शास्त्रार्थ के लिये भी प्रेरित किया। मुझे पराजित कर वे भारत में कुमारिका से हिमवान तक और पश्चिम समुद्र से पूर्व समुद्र तक अद्वैत का शंख फूँकेंगे।



मिथुन जैसे रात्रि के वियोग से सदैव के लिए छूट गये हों, जहाँ स्नान करते ही जन्मान्तर के ताप से प्राणी छूट जाता है, वहाँ शंकर जल में खड़ा होकर सूर्य की ओर मस्तक उठा कर गंगा की रससिक्त स्तुति करते रहे।

विश्वरूप — उनकी स्तुति जो तुम्हारे कान में पड़ी हो उसका कुछ संकेत दो सौम्य !

श्रुतिकेतु — भावपूर्ण, लय और स्वर में निकले उनके श्लोक जैसे आकाश पार कर देव लोक में विस्मय भर रहे थे आचार्य ! कहने की शक्ति मुझमें नहीं है पर हृदय में उस तृप्ति का सुख अब भी है। "त्रिपुरारि का जटाजूट जो तुम्हारा अवरोध बना था उससे तुमने शंकर पर कोप किया, तो फिर, हे माता ! तुम अपने सभी भक्तों को शिव बनाती चली जा रही हो कि शंकर भी तुम्हारी शक्ति का चमत्कार देखें। हे स्वर्ग की सीढ़ी ! अपवित्र अस्थिजाल जो तुम अपने साथ लिये चलती हो, इसलिए कि तुम्हारे जल में डुबकी लेकर जो लोग शिव बनेंगे उनकी माला इन्हीं अस्थियों की बनेगी। यह तुम्हारी क्या लीला है कि अज्ञान निद्रा में पड़े प्राणियों को अपने संसर्ग में आते ही तुम देवता बना देती हो और रागियों को भी अपनी लहरों के स्पर्श से रागहीन शिवलोक में भेज देती हो।"

विश्वरूप — अब आगे न कहो सौम्य ! शंकर के कण्ठ से भगवती सरस्वती अपनी कला का विस्तार करती हैं। शंकर कवि है, रस के समुद्र का कमल है। काव्य के अमृत से ही परलोक को वशीभूत कर लेगा ! शास्त्रार्थ के संकट में वह क्यों पड़ता है ? संगम स्नान के बाद भट्ट कुमारिल से उनकी भेंट हुई ?

होगा। इसमें भी मुझे सन्देह नहीं है। उनके भाव का दर्शन उनकी शिष्य मण्डली में जगत का भौतिक तथ्य बन गया कठिनाई यहीं है। अब तुम आहार करो प्रियदर्शन! विश्राम करो···आने दो शंकर को।

श्रुतिकेतु नर्मदा के उस पार अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ वे पहुँच गये हैं।

विश्वरूप पाँच सौ शिष्य सौम्य! [विस्मय के स्वर में]

श्रुतिकेतु इस समय तो सारा भारत उनका शिष्य बन गया है। उनके प्रधान शिष्य पद्मपाद न रोकते तो पता नहीं कितने लोग साथ लग गये होते।

विश्वरूप भट्ट कुमारिल से उनकी क्या बातें हुईं? तुम ध्यान से स्मरण कर कहो।

श्रुतिकेतु उत्तर काशी से, व्यासदेव से अपने भाष्य की प्रशंसा लेकर शंकर प्रयाग आये। प्रयाग के सितासित संगम के दर्शन मात्र से उनके चित में आनन्द और उल्लास का जो उद्रेक हुआ उससे वे कभी तो विष्णु स्वरूप और कभी शिव स्वरूप को प्राप्त होने लगे।

भारती सितासित संगम में स्नान करने वाले श्रुतिवाणी में दिव को प्राप्त होते हैं और पुराणवाणी में विष्णु या शिव रूप को प्राप्त होते हैं।

विश्वरूप [भारती से] देवी! सौम्य से मुझे शंकर की सूचना ले लेने दो। [गम्भीर मुद्रा में]

श्रुतिकेतु गंगा प्रवाह में मिलते ही जहाँ यमुना मन्थर पड़ जाती हैं जैसे नई सखी को देखकर लजा रही हों, जहाँ मराल की पाँति जल में खिले कमल सी दिखाई पड़ती है, चक्रवाक

अश्रद्धा के दोष का भागी बनता। अब मैं मौन होकर उस प्रसंग की बातें सुनूँगा।

श्रुतिकेतु पर बिना आपसे सहारा मिले मैं कितना कह पाऊँगा? साँस के लिए तो विश्राम लेना ही होगा। अलंकार और व्यञ्जना को आप रोक रहे हैं···सीधे अभिधा में···जो देखा और जो सुना···सीधे अभिधा में कहा नहीं जा सकेगा। चेष्टा मैं करूँगा पर जो मुझे सफलता न मिले तो पूज्यपाद उसे मेरी असमर्थता मानेंगे अपने प्रति मेरी अवज्ञा नहीं। [दोनों हाथ जोड़कर विश्वरूप के चरण पर सिर धर देता है।]

विश्वरूप [हँसकर] जैसे बने वैसे ही कहो, प्रियदर्शन! उस प्रसंग का साक्षात्कार तुमने किया है मुझे भी उसका साक्षात्कार करा दो!

श्रुतिकेतु स्नान के बाद तट के अक्षयवट के नीचे जब वे विश्राम कर रहे थे उनके कान में भट्टपाद के तुषानल में दग्ध होने की बात पड़ी। शिष्यों के साथ वे वहाँ पहुँचे। भट्टपाद के शिष्य मण्डल व्यूह में उनके चारों ओर खड़े थे और आँखों से आँसू गिरा रहे थे। ओउम् का उच्चारण करते जब शंकर उनके पास पहुँचे भट्टपाद उनकी ओर अपलक उसी प्रकार देखने लगे जैसे चकोर चन्द्रमा की और पद्म सूर्य की ओर देखता है। आँखों से खींचकर भट्टपाद शंकर को अपने प्रांगण में ले जाने लगे। देखने वालों को तो ऐसा ही लगा। भट्टपाद का आधा शरीर तुषानल का आहार बन चुका था, सब ओर के ऊपर उठते धूम में उनका मुख शैवाल के भीतर खिले पद्म का भ्रम उत्पन्न कर रहा था।

भारती शंकर के भीतर इस दृश्य से करुणा नहीं आयी पुत्र?

श्रुतिकेतु गंगा की स्तुति से सहस्रदल कमल की भाँति खिल कर कटि को वस्त्र से आवृत कर दोनों हाथों में दण्ड को ऊपर उठा कर उस अशी शंकर ने अघमर्षण स्नान किया। त्रिवेणी के जल में, शिष्यमण्डली के मण्डल में, नक्षत्र मंडल के बीच में चन्द्रमा जैसे वे लगते रहो। तट पर खड़े लोग विस्मय से, विनय से इस दृश्य को देख रहे थे।

विश्वरूप मीमांसक के स्वभाव में भाव-विभोर होना नहीं है सौम्य! भट्टपाद के निकट वे कब और कैसे गये? मुझे बस इतना ही सुनना है। अलंकार और व्यंजना के माध्यम से नहीं… सीधे अभिधा में सौम्य! समझ रहे हो।

श्रुतिकेतु हाँ आचार्य, पर शंकर वाणी की सूक्ष्मतम् गति हैं…देहधारी अलंकार और व्यंजना हैं।

भारती श्रुतिवाणी का श्रृङ्गार भी अलंकार और व्यञ्जना से हुआ है।

विश्वरूप सो तो है देवी! तत्वदर्शन में इनसे बाधा भी आती है। हम लोग अब एक शब्द न बोलेंगे सौम्य! संक्षेप में तुम इस युग के सबसे बड़े मीमांसक और सबसे बड़े वेदान्ती के मिलन का प्रसंग कहो।

श्रुतिकेतु आचार्य! भट्टपाद ने तो आपको अपने से बड़ा मीमांसक कह कर शंकर से आपकी सेवा में भेजा।

विश्वरूप मैं उनका शिष्य रह चुका हूँ प्रिय दर्शन! अग्नि धूम को सिर पर धारण करता है, और पर्वत तृण को। लोक में उनका अभाव न खले। उनके अंकुश से छूटकर मैं निरंकुश बन धर्म में प्रमाद न कर बैठूँ। मेरा भार बढ़ाने को ज्ञान के उस सूर्य ने यह कह दिया होगा। भट्टपाद ने मुझे स्वयं यह गौरव दिया इसे सुनकर जो मैं चुप रहता तो गुरुजन के प्रति

विश्वरूप अपराजित भट्ट कुमारिल की यह गति काल की गति का विजय केतु है। तब फिर शङ्कर ने उन्हें तारक मंत्र दिया होगा।

श्रुतिकेतु हाँ तात। भट्टपाद ने कहा, "शाबर भाष्य पर वार्तिक लिखना मेरे भाग्य में था, पर आपके भाष्य का वार्तिक किसी दूसरे मेधावी के भाग्य में हैं। वेदान्त की विजय के लिये···जिनके यश से दिगन्त धवल हो रहा है, श्रुति के कर्म मार्ग के जो सुमेरु हैं, प्रवृत्ति मार्ग से जो कभी स्वप्न में भी नहीं डिगे, चार पुरुषार्थ जिनके एक शरीर में सार्थक हैं, निवृत्ति मार्ग जिनके व्यंग्य और तर्क के बाणों से जर्जर है, पण्डितों के ऐसे मुकुट, सभा के मण्डन मण्डन मिश्र को अपनी विधि में दीक्षित करें।"

[श्रुतिकेतु गहरी साँस खींचता है। भारती देह की सुधि भूलकर जैसे किसी दूसरे लोक में चली गई है। विश्वरूप गंभीर विचार में पड़ जाते हैं।]

भारती [जैसे चेत में आकर] आर्यपुत्र! रात···चौथे पहर रात में···[विस्मय और भय के भाव]

विश्वरूप हाँ···चौथे पहर रात में···[भारती की ओर ध्यान से देखने लगते हैं।]

भारती बड़ा विचित्र स्वप्न देखा···उसका फल शुभ है कि अशुभ···

विश्वरूप दैवज्ञ से उसका विचार करा कर शान्ति कर्म करने थे।

भारती स्मरण जो नहीं रहा···अभी क्षणभर के लिए जैसे मैं भट्टपाद के लोक में चली गई और उन्होंने वह स्वप्न मुझे स्मरण कराया।

विश्वरूप भट्टपाद ने स्मरण कराया···[विस्मय की मुद्रा]

श्रुतिकेतु उनकी आँखों से मोती गिरने लगे माता ! और भरे कण्ठ से वे कहने लगे, "हे श्रुति विमुख सुगतों से धर्म की रक्षा करने वाले, मैं आपको दैत्यों से स्वर्ग की रक्षा करने वाले कार्तिकेय का अवतार मानता हूँ। गंगा, यमुना और सरस्वती की भाँति आप निष्पाप हैं। योग बल से गंगा जल के छींटे देकर मैं आपको भी जीवित कर सकता हूँ। मेरे भाष्य पर आप वार्तिक रचें।"

विश्वरूप [उत्सुक होकर] भट्ट कुमारिल ने तब क्या कहा पुत्र !

श्रुतिकेतु "धनुर्धर टेढ़े धनुष पर जिस प्रकार सीधी प्रत्यञ्चा चढ़ाते हैं महापुरुष भी अपनी कृपा से हीन में भी गुण का आरोप करते हैं। योगिराज ! यह तुम्हारी कृपा है। लोक धर्म के विरुद्ध चलने वाला यश का भागी नहीं बन सकता। जैमिनी की मीमासंक के बल से मैंने ईश्वर की सत्ता बुद्धि से नहीं मानी। भाव से उसमें रमा भी रहा। बिना परमेश्वर के विश्वास के इस संसार में सुख का ही लोप हो जाता है। फिर भी लोक में तो मैं ईश्वर विरोधी ही कहा गया। वेद विधि की रक्षा के लिए जिस सौगत गुरु से विद्या ली··· शास्त्रार्थ में उसी को हराकर उसके यश का ग्राह बना। ईश्वरद्रोह और गुरुद्रोह; लोक जिसे पातक कहता है, शुद्ध दर्शन में इसे जो कहा जाय···उसके प्रायश्चित का संकल्प लेकर इस वेद-विहित कर्म में मैं अब प्रतिश्रुत हूँ। इसे छोड़ने की बात न कहकर भगवान अब मुझे तारक मंत्र दें।"

भारती हाय ! तुषानल में बैठे भट्टपाद का चित्र आँखों के आगे अनायास उतरा रहे हैं।

कुछ फूले, कुछ अध फूले और कुछ अभी कली···पद्मपत्र से जल कहीं दिखाई नहीं पड़ता था। [चुप हो जाती है।]

विश्वरूप हाँ···तब···

भारती राजहंस का एक जोड़ा···हंस अपनी चोंच में कमल-केसर लेकर हंसिनी के मुख में डालता रहा··· [फिर चुप हो जाती है।]

श्रुतिकेतु आगे की बात भयानक है देवी !

भारती भयानक तो इस विश्व में कहीं कुछ नहीं है पुत्र ! दृष्टि-दोष भय का रूप लेता है। हाँ क्या कह रही थी ?

विश्वरूप हंस अपनी चोंच से कमल-केसर हंसिनी के मुँह में डालता रहा।

भारती हंसिनी के अंग-अंग से प्रीति की किरणें निकलने लगीं···

विश्वरूप नारी की चरम कामना का चित्र यही है देवी !

भारती जो कभी इसी पृथ्वी पर पूरी नहीं हुई आर्यपुत्र ! जिस दिन पूरी हो जायेगी, यह धरती न रहेगी। यह धरती तभी तक है जब तक वह कामना पूरी नहीं है।

विश्वरूप कामना-जन्य जगत में कामना का पूरा हो जाना, इसका अन्त होगा। यह भी श्रुति से प्रभावित है। स्वप्न का अन्त अभी नहीं आया। [श्रुतिकेतु उत्सुक होकर भारती की ओर अपलक देखता है।]

भारती [श्रुतिकेतु की ओर संकेत कर] सौम्य अधीर हो उठे हैं··· हाँ तो सुनो पुत्र ! [अपने ललाट पर दो बार अनामिका से ठोकती है।] हंस के पंख में हंसिनी ने सिर छिपा लिया। उसकी देह में जैसे कोई गति न रही।

श्रुतिकेतु उसी समय किसी व्याध ने···

भारती चित्त कब कहाँ चला जाता है···कितने लोकों को पार कर कहाँ टिक जाता है···इस दृश्यलोक से परे अनेक लोक हैं और चित्त की गति सब कहीं है।

विश्वरूप देवी, कोई इन्द्रजाल देख रही हो जिसके भाव तुम्हारे अंग-अंग से निकल रहे हैं।

भारती [आगे दीवाल की ओर संकेत कर] भट्टपाद का छाया रूप वहाँ···

विश्वरूप अब भी देख रही हो ?

भारती ए···हाँ··क्या [जैसे विस्मय के किसी अजाने लोक में पहुँच गई हो]

विश्वरूप [उठकर भारती के सिर पर हाथ रखकर] देवी ! कैसी दशा है तुम्हारी ? चित्त कैसा है ? [भारती सिसकने लगती है। विश्वरूप चौकी पर बैठ कर उसे दोनों हाथों से पकड़ लेते हैं।] नहीं···नहीं···शंकर की विजय में भी लोक का मङ्गल होगा। तुम्हारे अधीर होने से धरती की धीरता मिटेगी।

श्रुतिकेतु माता ! भट्टपाद ने शंकर से आपको सरस्वती का अंश और आचार्य को ब्रह्मा का अंश कहा था।

भारती करुणा के जितने प्रसंग काव्यों में हैं पुत्र ! सभी सरस्वती के रुदन हैं। सरस्वती की आँखों के मोती कवि-वाणी से रूप लेकर लोक को रुलाते रहे हैं।

विश्वरूप स्वप्न फिर भूल जायेगा और मैं सुनने को उत्सुक हूँ···

श्रुतिकेतु मेरा चित्त भी उसी में लगा है तात !

भारती [सोचती हुई] बहुत बड़ा सरोवर···अनेक रंगों के कमल···

भारती [हँसकर] आदि कवि ने यह देखा था सौम्य। जिसे देखकर उनके कण्ठ से काव्य की गंगा निकली थी। मैंने कुछ और ही देखा…

श्रुतिकेतु हाँ माता ! आपने कुछ दूसरा ही देखा…

भारती हंसिनी का सिर अभी हँस के पंख में छिपा था कि हंस के श्वेत पंख पर जैसे गेरू का रंग चढ़ने लगा। ग्रहण में चन्द्र-मण्डल जैसे काला पड़ जाता है, क्षण भर में हंस गेरू के रंग का हो गया।

विश्वरूप हंसिनी का सिर अभी भी उसके पंख में छिपा था ?

भारती हाँ आर्यपुत्र ! हंसिनी पता नहीं कब तक उसी दशा में रहती पर हंस दूसरे ही क्षण वेग में सर्प की भाँति जैसे फूत्कार छोड़ता हुआ कमलों को चीरता, बिना हंसिनी की ओर देखे आगे बढ़ता गया।

विश्वरूप [उत्कण्ठित होकर] अद्भुत स्वप्न है यह ! दैवज्ञ को भी यह विचार में डाल देगा।

भारती हंसिनी की सारी देह जल में डूब गई। सँभाल कर उसी मार्ग पर चली जिससे हंस गया था। भय और करुणा की पुकार उसके कण्ठ से निकलती रही पर हंस के कान में जैसे वह नहीं पड़ी।

श्रुतिकेतु आदि कवि ने जो देखा उससे अधिक करुणा इसमें है माता !

भारती प्राण पर खेलकर हंस के निकट वह पहुँच तो गई पर उसके रंग से भय खाकर वह जल में डूब गई, फिर न निकली।

श्रुतिकेतु कितनी देर…

भारती अनन्त काल के लिए।

विश्वरूप स्वप्न का अर्थ है कि शंकर से पराजित होकर मुझे संन्यासी बनना पड़ेगा। संन्यास के गैरिक वस्त्र मेरी देह पर चढ़ेंगे और देवी यह लोक छोड़ देंगी। देवी ने स्वप्न नहीं देखा सौम्य ! काल का संकेत देखा।

भारती केवल आपको जीत कर वे आपको संन्यास की दीक्षा नहीं दे पायेंगे।

श्रुतिकेतु शास्त्रार्थ का आधार तो यही बनेगा।

भारती जानती हूँ पुत्र ! आर्यपुत्र की अर्धांगिनी को जब तक न जीत लें तब तक उनकी जीत आधी होगी।

श्रुतिकेतु तो आप भी उनसे शास्त्रार्थ करेंगी ?

भारती आर्यपुत्र को जब वे जीत लेंगे, इनको संन्यास की दीक्षा देने चलेंगे तब···तब मैं उनके सामने खड़ी होकर शास्त्रार्थ के लिए उनका आवाहन करूँगी।

श्रुतिकेतु भट्टपाद ने आप को ही मध्यस्थ बनाने को कहा था।

विश्वरूप और शंकर ने मान लिया ?

श्रुतिकेतु हाँ तात ! बिना किसी सन्देह और भय के···

विश्वरूप हूँ···तब यह शंकर लोक का विस्मय है।

भारती जब से यह लोक है···इस लोक का धर्म है आर्यपुत्र ! पत्नी का पद जिस किसी भाग्यशालिनी को मिला होगा ऐसी कठिन अग्नि परीक्षा में कोई न पड़ी होगी···ऐसे दारुण असिधारा व्रत का निर्वाह किसी को न करना पड़ा होगा। लोक-विस्मय शंकर देख लेंगे अकेले वही नहीं कोई और है इस धरती पर···

विश्वरूप किसी अलौकिक संकल्प का प्रकाश तुम्हारी आकृति से निकल रहा है देवी !

भारती पति के प्रति मेरे अनुराग और निष्पक्ष निर्णय दोनों से योगी शंकर विस्मय में पड़ेंगे आर्यपुत्र ! जगत जीतकर भी वे मुझसे हारेंगे···हाँ हारेंगे । जय-पराजय व्यक्ति के हाथ के नहीं काल भगवान के हाथ के खिलौने हैं । मेरे प्रश्न का उत्तर न देकर वे धरती देखने लगेंगे । [अडिग विश्वास की किरणें भारती की आँखों से निकलने लगती है ।]

श्रुतिकेतु भगवती ! मुझे रोमांच हो आया ।

भारती ब्रह्मचारी शंकर को रोमांच होगा पुत्र ! और अपनी आँखों से देखोगे । [चन्द्रशालिका के बाहर स्तम्भ के किनारे खड़ी होती है ।]

विश्वरूप प्रियदर्शन ! चलो अब आतिथ्य लो । इतनी दूर की यात्रा में कितने कष्ट उठाने पड़े होंगे ?

श्रुतिकेतु यात्रा शुभ मुहूर्त में हुई थी तात ! यात्री दल बराबर मिलते गये ! आप का सन्देशवाहक हूँ, जिस किसी ने सुना पहले मुझे भोजन देकर स्वयं भोजन करने बैठा । नर्मदा के उस तट पर लोगों ने आग्रह से प्रातराश दिया । इस तट पर भी पिण्ड नहीं छूटा । योगी शंकर अब आते ही होंगे । उनके साथ ही मैं भी आप का आतिथ्य प्राप्त करूँगा । आप के दर्शन से, माता के दर्शन से जन्म-जन्म के अभाव मिट गये तात !

विश्वरूप भट्ट कुमारिल जैसे चकोर और समुद्र के लिए जो चन्द्रमा बना, उस कालजयी शंकर का दर्शन तुम्हें मिल चुका है ।

श्रुतिकेतु सूर्य का प्रताप बहुत है तात ! पर देखना लोग चन्द्र को ही चाहते हैं ।

विश्वरूप हा··हा··हा··तब कहो कि शंकर के दर्शन से तुम भी कवि बन गये हो। [दूर पर जनरव सुनाई पड़ता है।] शंकर की शिष्य मण्डली का कोलाहल है यह देवी !

भारती [स्तम्भ के समीप से] ध्वनि दोनों ओर से आ रही है आर्यपुत्र ! द्वार पर जिस पल शंकर आयें ऊपर से उन पर पुष्पवर्षा हो। कैसा रहेगा आर्यपुत्र ?

विश्वरूप हमारे धर्म की ध्वजा होगी यह कल्याणी ! मुझे यह बात नहीं सूझी।

भारती [मन्द हँसी] पुरुष के धर्म की ध्वजा क्या होती है आर्यपुत्र ?

विश्वरूप प्रकृति भगवती ! उसी को पत्नी कहा गया है।

भारती आप यहाँ आ जायँ। मैं दोनों कुब्जिकाओं के साथ पुष्प लेकर आती हूँ। नहीं आप वहीं अपने आसन पर दृढ़ रहें। शंकर आप को नहीं, पहले मुझे देखें। [भारती का वेग में प्रस्थान। सामने से भवन के प्राचीर के गोपुर से संन्यासी शंकर पद्मपाद के साथ प्रवेश करते हैं। उनके साथ पीछे चलने वालों की संख्या का ठीक अनुमान नहीं हो पाता। शंकर के शरीर का रंग स्वर्ण-चूर्ण सा है; किशोर वय, ललाट और आँखों से दिव्य बोध की किरणें, सिंह की गति, बायें कन्धे से दोनों ओर उतर कर व्याघ्रचर्म कटि और दोनों जानु को घेर रहा है। कण्ठ में रुद्राक्ष की माला। बालक गुरुदेव और माधव अम्बारी में बैठे हैं। मधुकर हथिनी को अंकुश देकर मोड़ता है। जनसमूह दोनों ओर सिकुड़ जाता है।]

मधुकर मार्ग दें ···आप लोग मार्ग दें···डरें नहीं [आगे लोग नहीं हटे हैं। हथिनी सिकुड़कर खड़ी हो जाती है, हाथ में शंख लेकर फूँकता है। लोग घूम कर पीछे देखते हैं और दोनों ओर हट कर मार्ग देते हैं। शंकर और पद्मपाद को बचाकर हथिनी भवन द्वार के सामने रुकती है।]

श्रुतिकेतु शंकर पद्मपाद के साथ द्वार पर आ गये तात! आज्ञा हो मैं स्तम्भ के पास से यह दृश्य देखूँ।

विश्वरूप जाओ प्रियदर्शन। इच्छा तो मुझे भी हो रही है पर ठीक है उनका स्वागत गृहस्वामिनी करें। [श्रुतिकेतु स्तम्भ के समीप से नीचे झुककर देखता है।]

शंकर [हथिनी के पास रुककर] किस कुल का दीपक यह बालक है? [बालक की ओर स्नेह से देखते रहते हैं।]

माधव मीमांसक मण्डन मिश्र का एक मात्र पुत्र!

शंकर यही एक सन्तान···कोई कन्या···

माधव [शंकर की ओर देखने में जैसे असमर्थ हो रहा है] यही एक···न कोई दूसरी कन्या न पुत्र···

शंकर [दायें हाथ में दण्ड सँभाल कर दोनों हाथ ऊपर फैलाकर] तब मैं इस बालक को लेकर पण्डित भवन में प्रवेश करूँगा।

माधव [कर्तव्यविमूढ़ सा] जी···

शंकर भय न करो सौम्य! ब्रह्मचारी शङ्कर से इस बालक को कोई भय नहीं है।

माधव नर्मदा की बाढ़ को एक घट में आप ही ने बन्द कर दिया था? लोग कहते हैं···

शंकर परमेश्वर ने नर्मदा का प्रवाह घट में रोका था···निमित्त मुझे बनना पड़ा था।

माधव प्रणाम भगवान। सेवक का अपराध क्षमा हो। [बालक को उठाकर उनके हाथों में देते हुए] ले लें आप गुरु···पुत्र को। [शंकर बालक को दोनों हाथों में लेकर अपने कन्धे पर बैठा लेते हैं। भवन के द्वार पर पहुँचते ही भारती दो कुब्जिकाओं के बीच में दोनों के साथ ऊपर से कई रंग के पुष्प गिराती हैं। शंकर हँस कर ऊपर देखते हैं। उनके कन्धे पर बालक दोनों हथेली बजाने लगता है।]

देवगुरु [हथेली बजाकर] माँ···माँ··· माँ···

शंकर माँ····माँ····माँ····चलो मैं तुम्हें भगवती के पास ले चलता हूँ।

भारती आइये···पधारिये···अपने चरण से इस गृह को पवित्र करें···मार्ग दिखाओ दौवारिक···स्वागत में मैं आ रही हूँ। [शंकर, पद्मपाद भवन में प्रवेश कर जाते हैं। जन-समूह शंकर, मण्डन और भारती का जयनाद करता है। नेपथ्य में शंकर और भारती की हँसी सुनाई पड़ती है।]

श्रुतिकेतु [चन्द्रशालिका में प्रवेश कर] शङ्कर के साथ माता आ रही हैं। आपके चिरंजीव शङ्कर के कन्धे पर हैं।

विश्वरूप उनके कन्धे पर वह कैसे गया सौम्य !

श्रुतिकेतु हथिनी वहाँ रुकी। अम्बारी में बालक के साथ जो किशोर बैठा था उससे पूछ कर कि बालक किस कुल का है···आपका अकेला पुत्र जानकर शङ्कर ने दोनों हाथ ऊपर उठाकर बालक

के साथ आपके भवन में प्रवेश करने को कहा। वह किशोर पहले सहम गया, फिर उनका नाम सुनकर मंत्रमुग्ध-सा बालक को उनके हाथों में दे दिया। उसे कन्धे पर बैठाकर शङ्कर द्वार पर आये कि देवी ने ऊपर से पुष्प की वर्षा की।
[भारती के पीछे बालक को कन्धे पर उठाये शंकर और उनके पीछे पद्मपाद चन्द्रशालिका में प्रवेश करते हैं। मण्डन दोनों हाथ जोड़कर आगे बढ़ते हैं और शंकर और पद्मपाद का आलिंगन करते हैं। श्रुतिकेतु हाथ जोड़े एक ओर खड़ा है।]

भारती गौतम ने अपने पाँच वर्ष के पुत्र को परिव्रज्या दी थी। योगी आप के पुत्र को संन्यास की दीक्षा देंगे आर्यपुत्र !

शंकर पापं शान्तं···पापं शान्तं···वेद मार्ग का इससे उद्धार नहीं होगा भगवती ! सौगतों ने जिस मार्ग पर अन्धकार का जाल तान दिया था, भट्ट कुमारिल ने जिस पर प्रकाश की दीप शिखा स्थापित की, आचार्य मण्डन जिसमें युक्ति का स्नेह डालते आये उसी मार्ग को मुझे भी प्रकाशित करना है। विश्वरूप आचार्य का यह अकेला पुत्र है। इसे पाँच पुत्र होंगे भगवती !

भारती इस आशीर्वाद से आप मीमांसक की कुल परम्परा को अमर कर गये। इनके पितरों का स्वर्ग भोग भी अब अचल रहेगा।

विश्वरूप इस बालक को मुझे देकर, अब आप आसन ग्रहण करें, पादार्घ्य और आतिथ्य लेकर मेरे गृहस्थ धर्म को पूर्ण करें।

शंकर मेरे कन्धे से बालक को भगवती उतारें। यह कार्य उनका है।

भारती **[शंकर के कन्धे से बालक को उतार कर]** अब आप आसन ग्रहण करें ब्रह्मचारी।

[भद्रपीठ की ओर संकेत करती है।]

शंकर इस आश्रम का आसन वह नहीं है भगवती !
[पद्मपाद मृगचर्म नीचे डाल देते हैं, शंकर बैठते हैं ।]
आप लोग बैठें वहीं । आपके आश्रम के आसन वहीं हैं ।

विश्वरूप अतिथि देवता होता है । हम लोग यहीं बैठ रहे हैं । [पद्मपाद दूसरा मृगचर्म डाल कर बैठते हैं । विश्वरूप भारती उन दोनों के सामने नीचे गच पर बिछे आस्तरण पर बैठ जाते हैं ।]

शंकर आठ वर्ष की आयु में केरल नरेश राजशेखर ने मुझे बुलाया मंत्री भेजकर…मैं नहीं गया । स्वयं आये तब भी नहीं गया । सोलह वर्ष की आयु बिताकर मीमासंक के द्वार पर मैं भिक्षा माँगने आया हूँ । केरल नरेश ने सुवर्ण, रत्न के साथ अलंकृत गज भेजा था, मैंने वह सब लौटा दिया था ।

विश्वरूप गृहस्थ आश्रम के धर्म की रक्षा मैं सर्वस्व देकर करूँगा योगी ! आप आतिथ्य लें ।

शंकर शास्त्रार्थ की भिक्षा माँगने आया हूँ…आप को जीत कर मैं सन्यास की दीक्षा दूँगा ।

भारती और जो कहीं हार जायें…

शंकर तब यह मानकर कि लोक कल्याण आपके ही मार्ग में हैं मैं निवृत्ति छोड़कर प्रवृत्ति का स्वागत करूँगा । मेरे पत्नी होगी, पुत्र होंगे, पूर्वजों के कुल की परम्परा चलेगी । आठ वर्ष की आयु में मैं सन्यासी बना था जिसका आदेश श्रुति में कहीं नहीं है ।

भारती यही तो सब सोचते हैं और कहते हैं आपका यह आचरण गौतम जैसा है ।

शंकर [हँसकर] प्रछन्न बौद्ध कहने वाले मुझे···अनेक हैं। दैवज्ञों ने गणना कर मेरी आयु कुल आठ वर्ष की निर्धारित की। यह सुनकर माता को जो दुःख हुआ, हर समय मेरी मृत्यु का भय उनके चित्त में भँवर बनाने लगा। उनकी इस दशा ने मेरे भीतर संकल्प उत्पन्न किया कि क्यों न इस थोड़ी आयु में परम पुरुषार्थ की सिद्धि कर लूँ। अर्थ, धर्म और काम अल्पायु के कारण मुझसे छूट गये। तीन पुरुषार्थ सभी छोड़ें यह कह कर तो सृष्टि का अन्त अपनी आँखों देख लूँगा। गौतम ने यही कहा···पुत्र और पत्नी तक को परिव्रज्या देने में उन्हें संकोच नहीं हुआ। उनके परिवार का यह कर्म सब परिवारों में चला होता तो आज लोक मिट गया होता। हम जो यहाँ बैठे हैं···इस धरती पर उतरने का किसी को अवसर न मिलता।

भारती तब आर्यपुत्र को संन्यासी बनाने में आपका आग्रह क्यों होगा ?

शंकर भट्ट कुमारिल वेदमार्गी थे, आचार्य विश्वरूप वेदमार्गी हैं, मैं भी वेदमार्गी हूँ, धर्म सम्प्रदायों के जितने नाम रूप हैं सभी अपना नाता वेद से बताते हैं, अपने मुख से तो गौतम भी वेदमार्गी बने थे। एक वेद से इतने भेद कैसे निकल गये ? अपने मोक्ष के लिए मैं संन्यासी नहीं बना था भगवती ! और न तो मोक्ष के भाव से मैं आचार्य को संन्यास की दीक्षा देना चाहूँगा।

भारती [बालक तन्मय होकर शंकर के मुख की ओर देखता रहता है।] ब्रह्मचारी के कन्धे पर भी डरा नहीं। ऐसे ही तन्मय बना रहा। तब से अब तक इसकी आँखें आप पर ही टिकी हैं ब्रह्मचारी !

शंकर वेद का स्वरूप यही है भगवती। अभेद दृष्टि! इस बालक की दृष्टि में भेद नहीं है। अभेद दृष्टि···अद्वैत-दर्शन के लिए मैं संन्यासी बना था, इसी फल के लिए मीमांसक भी संन्यासी बनेंगे। अनेक धर्म, अनेक सम्प्रदाय लोक-काय के कोढ़ बन गये हैं। अपने मोक्ष की चिन्ता न कर हमें लोक-कल्याण की चिन्ता करनी है।

विश्वरूप हम दोनों में अधिक अन्तर नहीं है ब्रह्मचारी! अब आप आतिथ्य लें।

शंकर मेरे साथ शास्त्रार्थ का वचन आप दें। यह भी स्वीकार करें कि शास्त्रार्थ में जो मुझे विजय मिले तो आप धर्मभाव से··· बिना किसी छल-कपट के अद्वैत का शंख फूँककर लोक को वेद मार्ग पर ले आने में मेरे सब से समर्थ सहायक बनेंगे।

विश्वरूप मुझे स्वीकार है यह सब···चाहें तो शपथ ले लें।

शंकर आप जैसे मनीषी से शपथ की कल्पना भी अपराध होगी।

विश्वरूप मध्यस्थ कौन बनेगा?

शंकर आपकी पत्नी और मेरी माता भगवती भारती! भट्ट कुमारिल ने जो यह बात न सुनाई होती···तब भी मैं इनके यश से परिचित था।

भारती कहीं पति के मोह में मेरे भीतर पक्षपात का पाप आये।

शंकर इसके पहले ही पृथ्वी रसातल चली गई रहेगी, सुमेरु गिर चुका रहेगा और समुद्र सूख जायेगा। गङ्गा में जल की जगह विष बहता रहेगा। अद्वैत का साधक आपके व्यवहार में पक्षपात या भेद का स्वप्न भी न देखेगा। मेरी जननी अभी जीवित हैं, आपके प्रति मेरा अविश्वास उनके प्रति भी मेरा अविश्वास बन जायेगा।

भारती उनका निर्वाह कैसे चलता होगा ?

शंकर कोई किसी का निर्वाह नहीं करता भगवती ! सब का निर्वाह वह परम पुरुष करता है जो घट-घट-वासी है। उनके अन्त समय में उनके निकट रहने का, अपने हाथ उनका दाह कर्म करने का वचन मैं उन्हें दे चुका हूँ।

पद्मपाद जब कभी उनका स्मरण गुरुदेव को आ जाता है उसी प्रकार इनकी आँखों से जल चलने लगता है जैसे माता के बिछोह में दूसरे बालक रोते हैं।

विश्वरूप ज्ञातिजन अपने कुल का शव संन्यासी को छूने देंगे ?

शंकर यह संकट तो है मीमांसक ! सम्भव है वे उपद्रव करें पर माता को जो वचन देकर संन्यासी बना था उसका पालन मैं अवश्य करूँगा। जननी के अन्त समय मैं उनके निकट रहूँगा और उनके मुख में अग्नि अपने हाथ दूँगा।

विश्वरूप लोक व्यवहार की इस रूढ़ि को आप तोड़ेंगे···

शंकर वेद किसी रूढ़ि को नहीं मानता मीमांसक ! आप स्वयं विज्ञ हैं। आपसे क्या कहूँ ?

[बालक भारती के अंक से निकल कर शंकर की जाँघ पर बैठ जाता है। हँसकर उसका सिर सूँघते हैं।] काशी में भगवान भूतनाथ के प्रत्यक्ष दर्शन और व्यास गुफा के समीप व्यासदेव के प्रत्यक्ष दर्शन का जो सुख मिला था उससे कम सुख यह नहीं है। [बालक को उठाकर अपने हृदय से लगा कर आँखें मूँद लेते हैं। भारती और विश्व गुरु परस्पर मुस्करा कर देखते हैं।]

विश्वरूप ब्रह्मचारी के वेदान्त का आनन्द तुम्हारा पुत्र बन गया है देवी !

शंकर भगवान बाल रूप में ही भजे जाते हैं। इन बाल भगवान के

जनक जननी बनने का भाग्य आप दम्पति का रहा। मुझे भी इनके संसर्ग का सुख मिल गया।

भारती शास्त्रार्थ तो कल प्रातःकाल आरम्भ हो। आज रात में ब्रह्म-चारी, व्यासदेव और भवानीपति शङ्कर के प्रत्यक्ष दर्शन की कथा सुनायें।

शंकर भगवती! जल, अग्नि, वायु, आकाश और क्षिति मैं नहीं हूँ, इनके गुण भी नहीं हूँ और न इन्द्रिय हूँ, इन सबसे परे मैं परम तत्व शिव हूँ। शङ्कर और व्यासदेव के रूप में मुझे आत्म-साक्षात्कार हुआ था। फिर भी आपकी रुचि के लिए जो जैसे हुआ उसकी कहानी मैं कह दूँगा।

भारती अब उठें भगवान्। आर्यपुत्र जब तक गृहस्थ हैं इनके धर्म की धुरी बनी रहे।

[भारती बालक को ले लेती है। सब उठते हैं।]

परदा गिरता है।

दूसरा अङ्क

[भवन के ऊपरी भाग में चन्द्रशालिका के भीतर के भद्रपीठ और अन्य आसन हटा दिये गये हैं। चौकियों पर का आस्तरण आदि हटाकर एक साथ बिछी तीनों चौकियों का स्थान परिवर्तित हो गया है। इस समय मध्य चन्द्रशालिका में वे तीन स्थान पर रखी गई हैं और तीन आसन उन पर पड़े हैं। भित्ति के समीप वाली चौकी पर श्वेत आसन है, उसके दाहिने सामने की चौकी का आसन पीला और बायें वाली पर बाघाम्बर पड़ा है। चन्द्रशालिका के भीतर और सामने बाहर स्तम्भों तक नीचे ऊनी आसन पड़े हैं। भवन के सामने वट वृक्ष के नीचे मंच पर भी आसन पड़े हैं जो शास्त्रार्थ सुनने और उसके परिणाम में उत्सुक जन-समूह से भर उठा है। प्राचीर के गोपुर से भवन के बीच की भूमि पर लोग अपने-अपने मित्रों की मण्डली बनाकर कहीं खड़े हैं, कुछ दूर पर बैठ भी गये हैं। भवन द्वार पर पहला दौवारिक खड़ा है। गोपुर से आनन्द और उत्साह में भरे ललाट के त्रिपुण्ड और वेश से श्रुति और स्मृति के अधिकारी विद्वान, तीन दल में प्रवेश करते हैं और मीमांसक मण्डन और योगी शंकर के इस शास्त्रार्थ के व्यापक प्रभाव की चर्चा करते भवन द्वार से प्रवेश कर चन्द्रशालिका में नीचे के आसनों पर अपने साथियों के साथ बैठते हैं। भवन

के पीछे के उद्यान से मण्डन मिश्र के साथ ब्रह्मचारी शंकर पूर्व दिशा से प्रवेश कर पश्चिम की ओर मुड़ते हैं। पद्मपाद, श्रुतिकेतु और कुछ और विद्यार्थी उन दोनों के पीछे हैं। उपस्थित जन समूह हर्ष ध्वनि के साथ दोनों के नाम का जयनाद करता है। शंकर दण्ड के साथ दोनों हाथ ऊपर उठाकर अभय दान की मुद्रा बनाते हैं, मण्डन मिश्र दोनों साथ जोड़कर सिर झुका लेते हैं।]

शंकर — आप लोगो के भाग्य से देवता भी ईर्षा करते होंगे···यह माहिष्मती अमरावती है, मीमांसक-मण्डन यहाँ बृहस्पति हैं, इनका यह भवन और उद्यान देवपुरी में बने देवगुरु के भवन और उपवन की भाँति हैं, अपने चरित्र से इस नगर के निवासी आप जन अमरावती के देव समुदाय से किसी बात में कम नहीं हैं।

कई स्वर — हम कृतार्थ हैं योगी !

शंकर — मीमांसक के व्यवहार से, आप जन के दर्शन से, आप जन का यह सेवक भी कृतार्थ है।

कई स्वर — ऐसा नही···ना···ना···ऐसा नहीं···

मण्डन — ब्रह्मचारी इस युग के अकेले चक्रवर्ती हैं और हम सब आप की प्रजा हैं।

[तुमल हर्ष ध्वनि और हँसी से आकाश गूँजने लगता है।]

शंकर — देवगुरु का भी एक ही पुत्र है जिसका नाम कच है, इनका भी एक ही पुत्र है। उसका नाम ही देवगुरु है।

[फिर हर्ष-ध्वनि होती है। चन्द्रशालिका के विद्वान

ऊपर के स्तम्भों के पास खड़े होकर नीचे यह दृश्य देखते और हर्ष-ध्वनि करते हैं।]

शंकर — और बातों में बृहस्पति के समान होकर भी एक बात में मीमांसक उनसे बड़े हैं। [सब ओर शान्ति छा जाती है, लोग आगे की बात सुनने को उत्सुक हैं।] इनकी पत्नी भगवती भारती सरस्वती की अंश रूपिणी हैं। यह बल बृहस्पति के पास नहीं है। भगवती भारती के रूप में स्वयं सरस्वती ने इस धरती पर जन्म लिया। वेद के उद्धार के लिए मीमांसक के रूप में पहले ब्रह्मा ने अवतार लिया, इसलिये सरस्वती को भी इस लोक में आना पड़ा।

कई स्वर — [हर्ष-ध्वनि] तब वे ब्रह्मदेव हैं...

शंकर — आप जन के मुख से मैं यही सुनना चाहता था, आपने सुना दिया। आप जन बोलें, लोक के ब्रह्मा मीमांसक मण्डन की जय।

[सब ओर मण्डन की जय की ध्वनि सुनाई पड़ती है।]

भगवती भारती की जय भी आप जन बोल दें।

["भगवती भारती की जय" की ध्वनि गूँज उठती है।]

[उत्साह और आनन्द की हर्ष ध्वनि पर्वत से टकरा कर शान्ति में गूँज जाती है]

मण्डन — सुनें। माहिष्मती के और इस शास्त्रार्थ के आकर्षण में दूर जनपदों और नगरों के जो जन आ गये हैं वे सब भगवान शंकर के अवतार ब्रह्मचारी शंकर की जय बोलें।

[समवेत समुदाय तुमुल ध्वनि में योगी शंकर का जयनाद करता है।]

शंकर — हमारा यह शास्त्रार्थ परस्पर की विद्या के प्रदर्शन के निमित्त

नहीं, वेद मार्ग में लोक की श्रद्धा के निमित्त हो रहा है। इसमें कहीं भी वैर, अहंकार, अभिमान का भाव नहीं है। वेद या तो भेदपरक है या अभेदवादी, एक ही साथ दोनों नहीं हैं।

कई स्वर साधु ! साधु ! साधु !

मण्डन देश भर में धर्म के जो अनेक समुदाय चल पड़े हैं···जिनमें कुछ सात्विक और कुछ घोर असात्विक हैं, परस्पर के संघर्ष और द्वन्द से लोक का संहार करते आये हैं···

शंकर देव प्रतिमा और गाय पर आघात केवल पश्चिम के यवन ही नहीं करते, आप की इस पवित्र भूमि के भेदवादी भी करते हैं। श्रुति देव-प्रतिमा भी है और गौ भी है। उसमें भेद का प्रतिपादन कर देव प्रतिमा और गौ रूपिणी श्रुति का ही संहार हो रहा है। इस शास्त्रार्थ से आप लोग अपने चित्त का प्रसादन करें। हम दोनों वादी जो इस समय वेद में दिखाई पड़ने वाले भेद और अभेद के पक्ष को सिद्ध कर रहे हैं व्यक्ति नहीं हैं, वेद के दो पक्ष हैं हम। आप जन इस शास्त्रार्थ को वेद के दो पक्षों का कार्य मानें, दो व्यक्तियों का नहीं। जय या पराजय हम दोनों में किसी एक व्यक्ति की न बन कर वेद के किसी एक पक्ष को होगी। हम दोनों में हार-जीत किसी की नहीं होगी, वेद के किसी एक पक्ष की प्रतिष्ठा हम दोनों मिलकर कर देंगे।

मण्डन हमारा लोक···आप सब उसी मार्ग पर चल कर अपना··· अपने देश का और अपने पूर्वजों के स्वर्ग भोग का कल्याण करें। शिव, विष्णु और शक्ति की उपासना के नाम पर सब ओर जो पाखण्ड चल रहा है, मारे भय के जिसके

शंकर किसी जन्म में उनमें एक मीमांसक रहा होगा और एक वेदान्ती···

[जन समुदाय फिर हर्ष की ध्वनि करता है।] हम लोग अब शास्त्रार्थ के आसन पर चल रहे हैं, आप लोग भी आसन ग्रहण करें। तपपूत इस पृथ्वी से पवित्र आसन दूसरा नहीं होता···हरी दूब के इस आसन पर आप लोग सुख से बैठें। शिष्यों के साथ हम दोनों वादी उपवन के लता मण्डप में प्रातराश कर आ रहे हैं। भगवती हमें साथ ही आहार देती हैं, चन्द्रशालिका के ऊपर मुक्त आकाश के नीचे हम दोनों को उनके आदेश से कठोर छत पर ही सोना पड़ता है। मुझे तो इसका जन्म से अभ्यास है पर मीमांसक के शरीर को क्लेश भोगना पड़ रहा है।

पद्मपाद भगवती मीमांसक को योगी बना रही हैं।

शंकर मुझसे अधिक सुविधा वे इन्हें किसी अवसर पर नहीं देतीं।

मण्डन कहें आप देवी के चारण बन गये हैं।

शंकर माता का यशगान कर रहा हूँ मीमांसक! आनन्द लहरी के श्लोक आदि शक्ति के दर्शन में मैं लिख सका। वे सभी श्लोक भगवती भारती पर भी चरितार्थ हैं।

कई स्वर धन्य भगवान्! ये शब्द···

श्रुतिकेतु आप के मुख से ही निकल सकते हैं।

शंकर भगवती भारती में मेरा वही मातृ भाव है जो पार्वती में है। यह भारत भूमि जिसमें श्रुति का मन्त्र दर्शन ऋषियों ने किया, जिसके अर्थ का अनुसरण स्मृति में वे करते आये··· हिमवान से कुमारिका के बीच की यह भूमि···हम सब की

विरोध में आप उँगली भी नहीं उठा पाते वह ऐसे लुप्त हो जायगा जैसे शरद का मेघ लुप्त होता है।

कई स्वर साधु ! साधु ! साधु !

[उत्साह और आनन्द की हर्ष ध्वनि पर्वत से टकरा कर दिगन्त में गूँज जाती है।]

शंकर आप लोग स्वस्थ चित्त से आसन ग्रहण करें। [सब ओर देख कर] अहा ! ऐसा विशाल जन समूह हमारे शास्त्रार्थ में रुचि ले रहा है मीमांसक !

मण्डन सूर्य के उदय के पूर्व जो क्षितिज पर उषा की लाली फैल जाती है···हमारे शास्त्रार्थ में उपस्थित यह जन समूह उषा का रूप है···वेद का सूर्य अब उदय हो रहा है जिसके प्रताप को सह लेने में सुगत रूपिणी काल रात्रि समर्थ न होगी।

शंकर बार-बार परिहास में मीमांसक मुझे कवि कहते रहे हैं। आप लोग देख लें अब ये स्वयं कवि बन गये हैं। वेद रूपी सूर्य से सुगत रूपिणी कालरात्रि मिटेगी। रस, अलंकार और व्यंजना से भरे वाक्य को आप लोग क्या कहेंगे ?

कई स्वर काव्य ! काव्य ! काव्य !

[शंकर मण्डन के साथ सभी जन खिलकर हँस पड़ते हैं, देर तक जिसकी ध्वनि गूँजती रहती है।]

पद्मपाद [सामने पर्वत की ओर हाथ उठा कर] आप जन के उत्साह और हास्य का सुख भोगने को बाघ का एक जोड़ा वहाँ खड़ा है। [जन समुदाय की आँखें उधर घूम जाती हैं।]

श्रुतिकेतु शास्त्रार्थ का सुख ले रहे हैं वे···

यह मातृभूमि मेरे लिए पार्वती का पार्थिव रूप है। इस भूमि पर मैं जब चलता हूँ श्वास से अपना भार ऊपर खींचे रहता हूँ कि कहीं मेरे चरण माता की देह पर क्लेश न उत्पन्न करें।

[धन्य···धन्य···का उच्चारण सब ओर से जैसे दिशाओं को भेद कर आने लगता है। शंकर के नेत्र जैसे अपने आगे धरती पर बिछ गये हैं।]

मण्डन [भरे कंठ से] योगी···भगवान शङ्कर देह के बन्धन से मुक्त आत्माराम हैं, इनसे अब मैं शास्त्रार्थ न कर इनके अद्वैत का जयगान करूँ।

शंकर मेरा अपना कुछ नहीं है मीमांसक! जो कुछ है सब श्रुति का है। श्रुति में जो है उसे मथकर हमें वही निकालना है। देव और दैत्य कुल ने जैसे समुद्र मथकर चौदह रत्न निकाला, उसी भाँति इस शास्त्रार्थ में श्रुति का सार निकाल कर हमें अपने लोक को दे देना है। हाथी के कान जैसे इस चञ्चल शरीर से परे यश के उस शरीर को अपने लोक में छोड़ जाना है जो वेद के लुप्त मार्ग को लोक में फिर प्रकट करे।

पद्मपाद अब शास्त्रार्थ का समय बीत रहा है।

शंकर [हँसकर] काल नहीं बीतता भद्र! इस देह की आयु भर बीतती है।

पद्मपाद भगवती की आठ प्रकार की दृष्टि का दर्शन अपने देश की आठ महानगरियों पर आचार्य ने कैसे किया है? भट्ट कुमारिल के शिष्य ब्रह्मचारी श्रुतिकेतु जानना चाहते हैं।

श्रुतिकेतु   प्रयाग में सौन्द हरी के उस श्लोक की चर्चा कान में पड़ी थी।

शंकर   ये आठ नगरियाँ भगवती का दृष्टि-विलास हैं। इस भूमि पर इससे पृथक ये देखी नहीं जा सकेंगी। जिस किसी के मन में इस देश की भूमि का रूप पार्वती का रूप बन जायेगा आठ पुरी उसके चित्त में भगवती का दृष्टि विलास··· आठ प्रकार का दृष्टि विलास बन जायेंगी। विशाला कल्याणी, अयोध्या, धारा, मधुरा, भोगवती, अवन्ती और विजया भारत भूमि की आठ महानगरी आद्या शक्ति की आठ प्रकार की दृष्टि हैं···इन आठ दृष्टियों का भेद इन नगरियों का वाह्यभेद है, नहीं तो अभेद बुद्धि में वह दृष्टि एक ही है और इन नगरियों में भी वही एकता है। इसे आप लोग दृष्टि की, श्रुति की, और सृष्टि की एकता मान लें। भेद का परिचय विद्या से नहीं है, उसका जन्म तो अविद्या की भूमि में होता है ··ऊसर या रेत की मरुभूमि अविद्या का बवंडर उत्पन्न करती है जो लक्ष्यहीन, सिद्धि-हीन और उक्तिहीन है।

[चन्द्रशालिका के ऊपर भारती लाल अंशुक पहने दोनों हाथों में उठाये सोने के पात्र से सूर्य को अर्घ्य दे रही हैं। जल के साथ जपा और लाल कमल के फूल नीचे गिरते हैं। अर्घ्य के जल गिरने के साथ ही भारती नीचे की ओर झुकती जाती हैं। शरीर झुकते-झुकते अर्धवृत्त बना देता है। अर्घ्यपात्र नीचे रखकर भारती बैठकर हाथ जोड़ लेती हैं। शंकर, मण्डन, साथ के लोगों के साथ द्वार पर पहुँचते हैं। दौवारिक हाथ जोड़कर सिर झुकाता है। सब भवन में प्रवेश कर जाते हैं।]

भारती [सूर्य की ओर दोनों हाथ जोड़े जैसे दो कमल जुट गये हों] भुवन भावन ! शास्त्रार्थ का आज सातवाँ दिन है। पल भर को भी दासी की पलकों में नींद का वास नहीं हुआ। इस अग्नि-परीक्षा में पार पाना दो हाथों से समुद्र पार करने से भी कठिन है। दासी की लाज आपके हाथ है। अपने अंश से आप इन दोनों पुष्प हारों में समा जायें। [दोनों हाथों में एक-एक माला उठाकर ऊपर···· सिर के ऊपर ले जाती है।] दोनों वादियों के कण्ठ में मैं एक-एक माला डाल कर घोषणा करूँगी····जिसके कण्ठ की माला से भगवान भास्कर अपना अंश खींच लेंगे वह कुम्हला जायेगी और उसकी हार····वह माला ही बन जायेगी।

[शंकर, मण्डन, पद्मपाद, श्रुतिकेतु चन्द्रशाला में प्रवेश करते हैं। उपस्थित पण्डित मण्डली सम्भ्रम में उठकर हाथ जोड़ती हैं।]

मण्डन आप लोग आसन ग्रहण करें। भगवती सूर्य भगवान को अर्घ्य देकर आ रही होंगी।

[शंकर उस चौकी पर सुखासन लगाकर बैठते हैं जिस-पर व्याघ्रचर्म पड़ा है। उनका मुख पूर्व की ओर है। मण्डन पीले आसन वाली चौकी पर शंकर के सामने पश्चिम मुख कर बैठते हैं। शंकर के पीछे पद्मपाद और मण्डन के पीछे श्रुतिकेतु नीचे आसन पर बैठते हैं। अन्य सभी जन नीचे आसनों पर बैठ जाते हैं। शंकर की देह पर व्याघ्रचर्म है। मण्डन के वस्त्र पीले और ललाट पर कपूर के रंग के भस्म का त्रिपुण्ड है। श्वेत

आसन वाली चौकी मध्यस्थ भारती के लिये अभी रिक्त है ।]

मधुकर [भारती की चौकी के दायें वाले द्वार से प्रवेश कर] माता अभी आ रही हैं ।

शंकर कह दो भद्र ! भगवती उपासना से कृतार्थ होकर आयेंगी । उनके धर्म में बाधा हम लोग नहीं बनगे । ठीक कह रहा हूँ मीमासंक !

मण्डन आपकी वाणी कामधेनु का पय और कल्पवृक्ष का फल है··· उसका अर्थ चिन्तामणि का नृत्य है । जिससे श्रुति के तत्व प्रकाशित हो रहे हैं, उसका प्रकाशक आप मुझे क्यों बनाना चाहते हैं ? सूर्य की किरणें किसी अन्य से प्रताप का प्रभाव नहीं माँगती ।

शंकर अपने नित्य के अग्निहोत्र से आप उन्हें बल देते हैं ।

मण्डन अहा ! तो आप अग्निहोत्र को उपयोगी मानते हैं ।

शंकर अग्निहोत्र अन्य सभी कर्मों का मौलिमुकुट है, यज्ञ का सनातन शरीर है, बल, बुद्धि आदि सभी गुणों का आदि स्रोत है । चित्त की शान्ति और शुद्धि की अमोघ औषधि यही है ।

श्रुतिकेतु काशी में भूतनाथ का दर्शन जो आप को मिला था हमें उससे परिचित करें आचार्य ।

कई स्वर हाँ···हाँ···हमें कृतार्थ करें ।

शंकर शास्त्रार्थ के मूल केन्द्र से चित्त को खींचकर इधर लाना होगा ।

कई स्वर आप समर्थ हैं···

शंकर श्रुति से पृथक किसी सामर्थ्य का स्वप्न भी मुझे नहीं

आता। आप लोगों की अवज्ञा न हो इस अर्थ वह प्रसंग मुझे कहना ही पड़ेगा। वृष का सूर्य आकाश के मध्य विन्दु से अग्नि की वर्षा कर रहा था। सूर्यकान्त मणि की शिला से शंकर के भाल नेत्र की भाँति स्फुलिंग छूट रहे थे। धरती पर सूर्य कीं किरणें मोर के पंख बना रही थीं, हंस कमल बन में सारी देह जल में बोर कर कमल नाल से सिर टेके आँखें मूँदे पड़े थे। मत्स्य पानी के ऊपर सिर निकालने में डर रहे थे, पक्षी वृक्ष कोटर में छिपे पड़े थे मैं [**पद्मपाद की ओर संकेत कर**] इन आयुष्यमान के साथ गंगा तट जा रहा था।

पद्मनाथ बीच मार्ग में, चार भयानक कुत्तों के बीच में, कराल वेशधारी अञ्जन पर्वत के शृंग जैसा चाण्डाल खड़ा था।

शंकर देखते ही मेरे मुख से असावधानी में निकल गया…दूर हटो …फिर उसके मुख से जो अट्टहास निकला प्रलय के पूर्व जैसे रुद्र के मुँह से निकलता है। मेरे रोयें फूट गये।

पद्मपाद संन्यासी वेश बना कर ऐसे अनेक, गृहस्थ समुदाय को ठगा करते हैं…दण्ड, कमण्डल, गेरु में रंगे वस्त्र, वाणी में छल, ज्ञान गन्ध से रहित…

शंकर इन शब्दों की प्रतिध्वनि दस दिशा में गूँज रही थी, उन आँखों की अद्भुत दृष्टि सीधे वाण की भाँति जैसे मेरे मर्म में धँसती चली जा रही थी, मेघ में बिजली जैसी दंत पंक्ति मेरे उपहास की अमिट रेखा बन गई थी।

पद्मपाद "उपनिषद् के शतशः वाक्य, अद्वितीय, असंग, सच्चिदानन्द अभेद ब्रह्म का प्रतिपादन करते हैं और तुम विस्मय है

इसी में भेद की कल्पना कर रहे हो और गङ्गा के तट पर नित्य अद्वैत का प्रवचन भी करते हो।"

शंकर "किसे दूर हटना है देह को या देही को? एक अन्नमय दूसरे अन्नमय से भिन्न है अथवा एक साक्षी दूसरे साक्षी से भिन्न है? एक साथ गंगा और मदिरा पात्र में प्रतिविम्बित होने वाला सूर्य एक ही है या दो है? फिर आत्मवादी, ब्राह्मण और श्वपच में भेद क्यों देख रहा है? विग्रह मात्र में रमने वाले उस पुराण पुरुष की क्या यह उपेक्षा नहीं है? अनन्त और उपाधि शून्य अपने स्वरूप को अविद्या में ठेलकर हाथी के कान जैसे इस अनस्थिर देह में 'अहं' की भावना को क्या कहेंगे? मायामय की माया में आप सरीखे विज्ञ पुरुष भी फँस गये? सत्य है···उसकी माया के बाहर कौन जा सका? आपको दोष फिर क्यों दिया?" स्वयं वेदान्त ने जैसे उसका रूप धारण कर मुझे सावधान किया और मेरे अंग-अंग में, उस अग्निदाह में भी तुषार संसर्ग का कम्प भर गया।

मण्डन यहाँ जितने पण्डित बैठे हैं सब की देह में यह सुनकर ही कम्पन भर गया है, आपने तो देखा और सुना भी···

कई स्वर आप सत्य कह रहे हैं मीमांसक! हमें रोमांच हो गया है।

शंकर उस क्षण इस देह की क्या दशा थी यह कहना तो असम्भव है। चित के किसी अज्ञात तल से ब्रह्म स्वरूप शब्द का प्रवाह मेरे भीतर से निकला।

मण्डन रुकें न योगिराज! [**सब की आकृति पर विस्मय और उत्सुकता के भाव नाचने लगते हैं।**]

शंकर "जिसके लिए यह ब्रह्माण्ड आत्म रूप से प्रकाशित है, जो

चैतन्य शिव, विष्णु से लेकर कृमिकीट तक में स्फुरित है वह 'मैं' हूँ यह जिसका बोध है, जगत की सभी अनुभूतियों में वहीं एक तत्व रम रहा है वह मैं हूँ और मुझसे भिन्न कोई दूसरी सत्ता कहीं नहीं है, चित् रूप से जिसके लिए यह विश्व विस्तार केवल ब्रह्म का प्रवाह है, वह चाहे चाण्डाल हो, चाहे ब्राह्मण मेरा गुरु है।"

मण्डन आप की ओर दृष्टि फेरना भी इस क्षण कठिन है बाल संन्यासी! भगवान शंकर जैसे इस समय आपके सामने हैं और आप उनके समक्ष यह सब कह रहे हैं।

शंकर वेद स्वरूप, अष्टमूर्ति, भाल पर चन्द्रकला···शंकर का रूप इस पल भी मेरे सामने है।

[सामने भित्ति पर निर्निमेष देखते, हाथ जोड़कर शंकर भावपूर्ण प्रार्थना के स्वर में कहने लगते हैं।] देह दृष्टि से तुम्हारा दास हूँ···जीव दृष्टि से तुम्हारा अंश···हे त्रिलोचन! आत्मदृष्टि से तो आत्मस्वरूप केवल तुम हो। वेद पुरुष के मौलि-मणि! आपकी प्रभा से जगत का वाह्य और अन्तर प्रकाशित है। **[अन्य सभी जन शंकर के सामने भित्ति की ओर देखकर भय, भक्ति विनय और हर्ष में पृथ्वी पर सिर रख देते हैं।]**

मण्डन **[घूमकर उधर देखते हुए]** एँ! तो भूतनाथ का दर्शन सब को मिल गया। ठगा मैं अकेले गया?

शंकर उपस्थित मंडली में वह अभेद दृष्टि उत्पन्न हो गई मीमांसक! मेरे भाव में सभी डूब गये। प्रलय में सुमेरु की भाँति अकेले आप नहीं डूब सके। एकात्मभाव की प्रतिष्ठा जिस दिन

आप करेंगे, श्रुति का अभेददशन आपको यह दर्शन भी देगा।

[भारती दोनों हाथों में माला लेकर लाल अंशुक पहने प्रवेश करती है। सब की आकृति पर विस्मय के भाव देख कर ठिठक जाती है।]

मण्डन योगी शंकर ने यहाँ भगवान शंकर के छाया रूप का दर्शन करा दिया देवी! ठगा अकेला मैं गया।

भारती बिना मेरे उस दर्शन के अधिकारी आप अकेले कहाँ थे?

कई स्वर धन्य···धन्य देवी!

भारती उपासना में मुझे भी लगा कि यहाँ कोई दिव्य घटना हो रही है। ब्रह्मचारी शंकर ने केवल महेश्वर को देखा होगा। हम दोनों उमा-महेश्वर को एक साथ देखेंगे।

कई स्वर सत्य है···सत्य, यहाँ केवल एक ही रूप शङ्कर का देख पड़ा था। भगवती पार्वती उनके साथ नहीं थीं।

भारती चिन्ता न करें मीमांसक···हम उमा-महेश्वर को एक साथ देखेंगे।

शंकर उमा महेश्वर के रूप में तो आप दम्पति यहीं हैं। सब लोग आपका दर्शन भी पा रहे हैं। [तृप्ति की हँसी सब के कंठ से निकलती है।]

भारती [अपने आसन के सामने दोनों के बीच में खड़ी होकर] शास्त्रार्थ का आज सातवाँ दिन है। मुझे जो भार आप महापुरुषों ने दिया था उसका निर्वाह भी आपकी धर्म बुद्धि से ही मेरे लिए सम्भव हो सका है। [चन्द्रशालिका में सब ओर देखकर] पंडितजन जो कृपा कर इस धर्म-यज्ञ में भाग लेने के लिए आते रहे और राग द्वेष से मुक्त होकर वादियों

को अपने पुण्य का फल देते रहे हैं उनके शील और प्रभाव के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। दोनों वादियों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता मैं कर बद्ध होकर प्रकट करती हूँ।

शंकर दानी याचक के प्रति कृतज्ञ हो रहा है देवी! लोक की विधि यह नहीं है।

भारती उस विधि का पार्थिव रूप आप स्वयं हैं। शास्त्रार्थ के आसन पर आप दोनों मुखमंडल पद्म की भाँति विकसित रहे, ओठों पर स्मित की दिव्य रेखा आप दोनों के खेलती रही··· भय या क्रोध के कारण आप में किसी के शरीर से स्वेद नहीं चला, न कम्प हुआ, किसी ने एक बार भी हताश होकर आकाश नहीं देखा, परस्पर उत्तर आप शील से, विनय से···प्रतिभा से देते गये···कटु शब्द या वाक्छल का प्रयोग किसी ने एक बार भी नहीं किया। मध्यस्थ के आसन पर बैठकर मैं बराबर जैसे दिव्य लोकों में सदेह पहुँचती रही यह सब आप दोनों महापुरुषों के शुद्ध व्यवहार और शुद्ध विचार से ही सम्भव हो सका। मैं किन शब्दों में आप दोनों के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करूँ मुझे नहीं सूझ रहा है।

मण्डन अपने आसन पर बैठकर अब हमारा प्रतिपादन सुनें देवी!

भारती इस आसन पर अब मुझे नहीं बैठना है मीमांसक! मध्यस्थ के आसन से मैं आपको बराबर इसी शब्द से सम्बोधित करती रही हूँ, जितनी देर इस आसन पर रही हूँ मेरे भीतर केवल मध्यस्थ का धर्म रहा है।

शंकर मैं साक्षी हूँ भगवती! मीमांसक की पत्नी का भाव आपके भीतर किसी क्षण नहीं आया···

भारती आप दोनों को अपने अधिकार से मैं बराबर एक ही साथ

रखती आई···इस आसन की मर्यादा के आग्रह में मीमांसक से मैं एकान्त में एक क्षण भी नहीं मिली। आहार और अन्य सेवायें आप दोनों को मुझसे समान मिली हैं।

शंकर मैं स्वीकार कर रहा हूँ भगवती ! पति भाव से इनकी ओर इन दिनों आपने एक बार भी नहीं देखा। धरती हिलती है पर आप नहीं हिलीं।

भारती बिना उस भाव के इस शरीर का भार अब नहीं चलता संन्यासी ! तुम काल जयी हो और मैं काल के पाश में हूँ। बालक मेरी ओर देखता नहीं···गाय वत्स की ओर रँभाती हुई दौड़े और वत्स उसके स्तन में मुँह न लगाये तो उस गाय की जो दशा होगी वही मेरी है।

मण्डन देवी ! क्या कह रही हो ? [**उद्वेग की मुद्रा**]

भारती आप कुछ न पूछें मीमांसक ! अन्यथा···अन्यथा मेरे साथ यह भवन भूमि में चला जायेगा। माधव ! माधव ! [**द्वार की ओर मुँह कर लेती है।**]

माधव [**भवन के भीतर से**] कहें अम्बा···

भारती बालक को ले आओ प्रियदर्शन···

माधव अच्छा अम्बा···

भारती प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण क्या ?·· आप लोग···यहाँ बैठे सभी मनस्वी देख लें मुझ पर क्या बीत रही है ? मीमांसक ! आप धैर्य न छोड़ेंगे। शास्त्रार्थ में आप प्रतिश्रुत हैं। शंकर के डमरू की ध्वनि से भी आपको विचलित नहीं होना है। [**हाथ की दोनों माला अपने आसन पर रख देती है।**] मुझ पर अब चाहे जो बीते···मेरी आहुति से मेरे लोक का कल्याण होगा। यह श्रद्धा ही मुझे भवसागर के पार ले जायेगी।

शंकर श्रुति के मन्त्र जिसके कान में पड़ेंगे उसके मन में···उसके हृदय में आपका आसन बनेगा भगवती !

भारती मुझे रंचमात्र दुःख नहीं है देवता ! जन्म के साथ ही मृत्यु के बीज भी आते हैं···मेरी जैसी अनेक आईं और गईं···यही क्रम है··· (विराग की हँसी)

शंकर देह से गई देवी ! पर उनमें कितनी हैं जिनका यश काल के मिटाये न मिटा···जिनका पोत काल के समुद्र में अभी भी चलता जा रहा है···जिनके धर्म की ध्वजा लोक यात्रा के हारे थके प्राणियों को आज भी बल और धैर्य दे रही है ।

भारती कामना के दिव्य लोक में मुझे न ले जायँ देवता ! नाम और रूप की परिधि देह की है । आप जो कुछ कहते रहे हैं उसी आधार पर कह रही हूँ यश और कीर्ति का अवलेप आत्मा पर नहीं चढ़ता ।

कई स्वर धन्य हैं देवी ! आप धन्य हैं । [**उत्कर्ष का भाव जैसे वातावरण में भर जाता है ।**]

भारती आप लोग मेरी प्रशंसा न करें···न करें मेरी प्रशंसा आप लोग···शंकर के शूल जैसा, इन्द्र के वज्र जैसा, यमराज के दण्ड जैसा अपनी प्रशंसा के शब्द मेरा घात कर रहे हैं । हृदय के सभी भाव लुप्त हो गये हैं । शंकर···करुणा और विरह के भाव मिट गये हैं, तभी मेरी आँखों का जल सूख गया है ।

शंकर आपने मेरा नाम अपने मुँह से ले तो लिया । मैं अब कृतार्थ हूँ भगवती !

भारती संयम का सेतु टूट गया संन्यासी, और मैं नदी की धार में गिर पड़ी । अनायास असावधानी में नाम मेरे मुँह से निकल

गया। तुम्हारी दया की सीमा नहीं है···मेरे इस अपराध को हो सके तो भूलो···मुझे क्षमा करो।

शंकर भगवती! आप मेरे नाम का उच्चारण अपने मुँह से करें मैं इसकी कामना कर रहा था। यह मेरा पुण्य है भगवती! आप का अपराध नहीं।

[**माधव बालक को उठाये प्रवेश करता है। उपस्थित जन उत्सुक होकर उसकी ओर देखते हैं। उसकी ओर देखने में मण्डन की पलकें स्थिर हो गई हैं। शंकर के मुख पर मन्द स्मित के साथ सन्तोष के भाव हैं।**]

भारती मेरे पास ले आओ प्रियदर्शन! [**बालक की ओर दोनों बाहें फैला देती हैं। बालक उनकी ओर देखता है पर जैसे पहचानता नहीं।**] आओ···आओ प्राण··· [**बालक भयभीत होकर दायाँ हाथ बढ़ा कर जैसे उसे मना करता है और मुँह फेर कर माधव के कन्धे पर सिर टिका देता है।**] देख लिया आप लोगो ने···मैं अब इसकी माता नहीं हूँ···

शंकर भगवती! इस शास्त्रार्थ से मैं अब विरत होता हूँ···मीमांसक को आप पति भाव से देखें तब यह बाल भगवान आप को माता की आँखों से देखेंगे।

पद्मपाद इस अवसर पर यही उचित लगता है।

कई स्वर यही हो···यही हो!

भारती आप सब लोग अभी मेरे अधिकार में हैं···मध्यस्थ का पद अभी मुझसे छूटा नहीं है। अब यह शास्त्रार्थ नहीं छूटेगा। श्रुति के अर्थ-निर्णय में मैं बाधक बनूँ यह कलंक मुझे नहीं लेना है। पुत्र से अधिक प्रिय श्रुति का अर्थ-निर्णय है।

शंकर आपकी दशा देखकर मेरा वैराग काँप रहा है भगवती !

भारती माता का यही भाग्य होता है संन्यासी। नहीं तो किसी पुण्य-मयी नारी के आप अकेले पुत्र हैं। कुल आठ वर्ष की आयु में उसकी आँखों में नर्मदा या गंगा या यमुना भर कर आप संन्यासी कैसे हो गये ?

शंकर मुझे कुल आठ वर्ष की आयु मिली थी भगवती ! अल्पायु मरने से अच्छा संन्यासी बन कर मरना मुझे भला लगा। आठ वर्ष की और आयु मुझे भगवत्पाद गुरु की कृपा और साधु सेवा से मिली। वह जब समीप थी शंकर की कृपा से व्यासदेव ने मुझे सोलह वर्ष की आयु और दी।

भारती काशी में उमापति का दर्शन आप को जैसे मिला, उनकी प्रेरणा से उत्तर काशी में आपने व्यासदेव के ब्रह्मसूत्र का भाष्य जैसे किया इतना तो मैं सुन चुकी हूँ···पर व्यासदेव का प्रसंग आप मुझे सुना दें। इसे सुनकर मेरे प्राण को टिके रहने का आधार मिल जायेगा।

शंकर आसन ग्रहण करें माता ! इससे बड़ा पुण्य मुझे दूसरा नहीं मिलेगा।

भारती ऐसी ही खड़ी रह कर मुझे सुनना है। वह आसन मुझ से छूट चुका है।

शंकर फिर मध्यस्थ कौन बनेगा ?

भारती यह मैं समय पर कह दूँगी। इस समय पहले आप वह प्रसंग सुनायें।

शंकर व्यास रचित ब्रह्मसूत्र का शारीरक भाष्य वहाँ मैं अपने शिष्यों को सुना रहा था।

पद्मपाद शिष्य गहन, गम्भीर विषय से श्रान्त हो गये थे, तभी कोई

तेजस्वी ब्राह्मण आकर पूछने लगा, "तुम कौन हो और क्या पढ़ा रहे हो?" मैंने कहा, "वेदान्त तत्व को प्रत्यक्ष करने वाले ये हमारे गुरु हैं। ब्रह्मसूत्र पर अपना अद्वैतवाद प्रतिपादक भाष्य हम शिष्यों को पढ़ा रहे हैं।"

शंकर मेरी ओर तीव्र दृष्टि से देखकर ब्राह्मण बोला, "शिष्य तुम्हें भाष्यकार कह रहे हैं वह भी व्यासरचित ब्रह्मसूत्र का···इस अद्भुत कथन को दूर रखकर केवल एक सूत्र का अर्थ तुम मुझे बता दो।"

पद्मपाद फिर आचार्य ने विनय से कहा, "सूत्र के ज्ञानी गुरुओं को मैं नमस्कार करता हूँ, मुझे अपने ज्ञान का अहंकार नहीं है, आप कृपा कर प्रश्न करें, जो सूझेगा उत्तर दूँगा।"

शंकर तृतीय अध्याय के प्रथम सूत्र का अर्थ वह पूछ बैठे। ताण्डि श्रुति में गौतम और जैबल के प्रश्न-उत्तर के रूप में मैंने अर्थ किया, शक्तिभर अर्थ को सुगम और संगत भी किया···

पद्मपाद पर उस वावदूक ने सौ प्रकार के विकल्प से उस अर्थ का ऐसा चमत्कारपूर्वक खण्डन किया कि हम सब अवाक रह गये। आचार्य ने सौ प्रकार से उस अर्थ को सिद्ध प्रतिपादित किया। खण्डन और मण्डन में आठ दिन बीत गये। दो सूर्य, दो चन्द्रमा, दो बृहस्पति या दो शेषनाग समान शक्ति और अधिकार से जैसे शास्त्रार्थ कर रहे थे। वृक्षों पर बैठ कर पक्षी सुनने लगे, सर्प और सिंह जैसे बन जीव सब ओर छिप कर सुनते रहे। तब मेरे मुख से विस्मय में निकल गया···

मण्डन हाँ···क्या निकल गया?

पद्मपाद यह ब्राह्मण कोई दूसरे नहीं दीर्घजीवी व्यासदेव ही हैं। दूसरे किसी में इस सामर्थ्य की कल्पना भी नहीं हो सकती। नारायण स्वरूप व्यास और शंकर स्वरूप शंकर के इस विवाद में मुझे विष्णु और शिव के विवाद का बोध होने लगा।

शंकर बालयोगी इन पद्मपाद की ओर विस्मय से मेरी आँखें घूम गईं। श्रद्धा, विनय, भय के भाव जो प्रतिपल इनके मुखमण्डल पर मुद्रा का रंग भर रहे थे···आँखें मूँद कर भक्ति से जो व्यासदेव का ध्यान किया···

पद्मपाद उस क्षण मेरे लोचन भी बन्द हो गये गुरुदेव! नन्दनवन की सुगन्ध सब ओर से आने लगी, उसके साथ ही मन्द, मृदु हँसी···

शंकर पलक उठते ही नेत्र के उत्सव बने मुनि खड़े थे। कृपा की स्मित मुद्रा, स्वर्णजाल सरीखा जटा कलाप, तड़ित वलय से मण्डित सघन मेघ की शोभा, ज्ञान मुद्रा में श्रुति के अर्थ कल्पवृक्ष के सुमन से झड़ रहे थे।

भारती कृतार्थ बनगई मैं इस काव्यमय शब्द-चित्र से···[उल्लास में]

शंकर भगवती! वस्तु, विधि और स्थिति जब भाव में सत्य हो उठती हैं वहीं काव्य का जन्म होता है। उनके कण्ठ में सत्ताइस रुद्राक्ष की माला दुर्लभ मोती की नक्षत्र माला सी देख पड़ती थी। जटा, भस्म, रुद्राक्ष माला और सिंह चर्म के विभव से जैसे वे उस समय भव के अर्ध आसन पर बैठने के अधिकारी बन गये थे। वेद रूपी समुद्र में चार मेंड़ देने वाले, श्रुति अर्थ के अनुसरण में अठारह पुराण के विधाता; त्रिकालदर्शी, महाभारत जैसे चन्द्रमा के जनक

विद्या के उन अगाध समुद्र की ओर विस्मय विभोर होकर मैं देखता ही रह गया !

पद्मपाद आचार्य ने स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया···प्रसन्न तो वह पहले ही थे···अपने सूत्रों के समर्थ भाष्यकार की ओर वे कृपा की दृष्टि से देखने लगे। अपने दोनों हाथ इनके सिर पर रख कर वे ऐसे शोभित हुये जैसे चराचर को अभय कर रहे हों।

भारती मुनि के मुख से स्वस्ति के शब्द भी निकले या मौन ही बने रहे।

शंकर आसन ग्रहण कर···शरीर के अगले भाग को आगे झुका-कर···चातक को तृप्ति देने जैसे मेघ धरती पर उतर आया हो···

भारती कहते चलें योगिराज। इस समय रुक कर हम सब की साँस आप रोक रहे हैं।

कई स्वर सत्य कह रही हैं भगवती !

शंकर तुम शुकदेव की भाँति मुझे प्रिय हो···शंकर के सभांकर्ण नामक सिद्ध से सुनकर तुमने यह महाभाष्य बनाया है। रोष का लेश भी तुम में नहीं है···तुम्हारा चित्त सारी कलाओं का आश्रय है।

पद्मपाद आप बहुत कुछ छोड़ गये आचार्य !

शंकर अपनी प्रशंसा की बात अपने मुँह से कितनी कहता जाऊँ···

भारती तब आप ही कह दें संन्यासी···उस प्रसंग की बातें चुराकर आप लोग श्रुति के चोर बनेंगे।
[उपस्थित जन हँस पड़ते हैं।]

पद्मपाद सब कहने में शास्त्रार्थ का सारा समय इसी में चला जायेगा भगवती !

भारती सच तो···इस प्रसंग में मन ऐसा रमा कि मैं शास्त्रार्थ भूल गई।

मण्डन एक जिज्ञासा मेरी है···

शंकर कहें मीमांसक···

मण्डन सभांकरणे सिद्ध के मुख से सुनकर आप ने भाष्य रचा इसका अर्थ क्या है ?

शंकर प्राकृत पुरुष को बिना दैवी सहायता के कोई महान सिद्धि नहीं मिलती। भाष्य मेरे समान प्राकृत पुरुष की रचना न कही जाय···व्यक्ति के साथ जो अंहभाव है उसे सिद्धि का अधिकारी नहीं रहने देता···दैवी सयोग में वह भाव मिटता है तब उसकी कृति उस व्यक्ति की न होकर दैवी गुण से सम्पन्न बन जाती है।

मण्डन हूँ···तो उस भाष्य के अधिकारी शंकर नाम के व्यक्ति नहीं है।

शंकर व्यक्ति के साथ भेद है···द्वैत है···भाष्य में निमित्त मात्र हूँ मैं···कर्त्ता बनने का दम्भ मैं नहीं स्वीकार करूँगा। भाष्य का यश मुझे न मिले मैं तो यही कामना करूँगा। अद्वैत के मूल नारायण हैं, उनसे ब्रह्मदेव, फिर वशिष्ठ, शक्ति···तब पराशर···उनसे व्यास···तब शुकदेव···शुक से शिष्य गौड़-पाद फिर··· मेरे गुरु···

मण्डन भगवत गोविन्दपाद···

शंकर जी···गुरु का नाम अपने मुँह से मैं नहीं लूँगा, आप भी न लेते होंगे।

मण्डन निश्चय...परम्परा की श्रद्धा टूटने पर परम्परा स्वयं टूट जाती है।

शंकर अद्वैत कुल की दसवीं पीढ़ी में मैं आया हूँ। पाँच पीढ़ी तो यह वशिष्ठ के कुल में ही टिकी रही।

भारती वशिष्ठ पद्म संभव के मानस पुत्र कहे गये हैं, पद्म नारायण की नाभि से निकला था, कहें तो सात पीढ़ी भी कह लेंगे।

शंकर अद्वैत एक ही कुल मानता है भगवती! वह कुल नारायण का है।

पद्मपाद व्यासदेव ने आपको अपनी पदवी प्रदान की थी।

शंकर उनकी पदवी भी तो परम पुरुष नारायण से चली थी।

भारती यह प्रसंग अब पूर्ण है। अब आप सब सावधान हो जायँ। **[शङ्कर और मण्डन दोनों अपने आसन पर दृढ़ होते हैं। उपस्थित अन्य जन भी स्थिर होकर बैठते हैं। भारती दोनों हाथों में एक-एक माला उठा लेती हैं। गंभीर संकल्प के भाव उनके मुख पर आते हैं।]**

शंकर माला का अवसर तो भगवती, विजय के बाद आता।

भारती **[चुप रहने का संकेत कर]** शास्त्रार्थ का निर्णय अब ये पुष्प के हार करेंगे। एक-एक माला मैं दोनों महापुरुषों के कण्ठ में डाल कर चली जाऊँगी। जिसके कण्ठ की माला मुर्झा जायेगी, श्वेत पुष्पदल निर्माल्य के बासी फूलों से काले पड़ जायेंगे उसकी पराजय मानी जायेगी। शंका, सन्देह किसी के चित्त में न आये। **[दोनों माला हिला-कर]** इन फूलों में 'सूर्यदेव' का अंश है। शास्त्रार्थ के निर्णायक अब वही हैं। जब तक उनका अंश इन फूलों में

रहेगा ये ऐसे ही खिले रहेंगे···जिस क्षण वह अंश निकल जायेगा इनके काले पड़ने में देर न लगेगी। जिसका पक्ष निर्बल पड़ेगा, उत्तर की शक्ति जिसमें न रह जायेगी, पराजय का विषाद जिसके मन में सर्प के विष सा विस्तार करेगा उसकी माला से सूर्य का अंश निकल जायेगा।

[दायें हाथ की माला मण्डन के कण्ठ में डाल देती हैं। मण्डन सिर झुका लेते हैं। दूसरी माला दायें हाथ में लेकर शंकर के आगे रखकर] पहन लें ब्रह्मचारी !

शंकर अपने हाथ से मेरे कण्ठ में नहीं···

भारती आप परपुरुष हैं···क्यों भूल रहे हैं ?

शंकर अपनी माता का केवल पुत्र हूँ मैं···पुरुष अभी किसी का नहीं बना···

भारती [मन्द हँसी] पर मैं किसी की पत्नी बन चुकी हूँ। [विनोद में मण्डन की ओर संकेत करती है।] और किसी की माता भी (माधव के कन्धे से सटे बालक की ओर संकेत कर), जो अभी किसी की पत्नी न बनी होगी आप के कण्ठ में माला डालेगी।

[शंकर मण्डन के साथ सभी जन हँस पड़ते हैं।]

शंकर अब इस जन्म में तो नहीं···

भारती अब किसी भी जन्म में नहीं···

शंकर आप शाप दे रही हैं···

भारती जी···आप की मुक्ति का शाप दे रही हूँ मैं···जन्म और मरण के चक्र से आप मुक्त हो जायें···जो आप अभी हो चुके हैं। हाँ···मुक्त होने पर जो आप पत्नी की कामना करें···

[सब लोग फिर हँसते हैं ।] अब आप माला पहन कर शास्त्रार्थ का श्री गणेश करें नहीं तो फिर किसी कुमारी को बुलाऊँ इस कार्य के लिये ।

[उपस्थित जन खिलकर हँसते हैं । शंकर माला उठाकर कण्ठ में डाल लेते हैं ।]

ब्रह्मचारी डर गये···कोई कुमारी जो माला कण्ठ में डालेगी तो वरुण का पाश बन जायेगी । व्याघ्र चर्म की जगह देह पर अंशुक और क्षौम चढ़ जायेंगे, शीश पर काकपक्ष के ऊपर बाल पाश रहेगा···

शंकर [हँसकर] रहने दें, रहने दें, देवी ! [अन्य सभी जन हँसते रहते हैं ।]

भारती आप जब वर बनेंगे आपका वेश क्या होगा ? उसी का अनुमान कर रही थी ।

शंकर (दोनों हाथ जोड़कर) विनोद में आप मुझे कहाँ ले जा रही हैं ?

भारती विनोद देही का प्रधान भोग है ब्रह्मचारी ! बालक ने जो मेरा तिरस्कार किया उससे आप सभी महापुरुष खिन्न हो गये, उसे मिटा कर यहाँ से हटना उचित था । माधव ! देखें अब आता है मेरे अंक में । आर्यपुत्र की पत्नी का भाव अब मेरा लौट आया है ।

[माधव बालक को इधर फेरता है । भारती बाहें फैलाती हैं ।]

देवगुरु माँ···माँ···माँ [किलक कर उनके अंक में आ जाता है और उनके कन्धे से सट जाता है ।]

शंकर हाँ अब आप अपने पुत्र की माता बन गईं····

भारती पहले पति की पत्नी बनी···माता बनने के पहले पत्नी बनना होता है। अच्छा मैं अब चली, आप लोग अपना कार्य करें।

पद्मपाद माल के निर्णय में किसी प्रकार का व्यतिरेक तो नहीं होगा भगवती !

भारती ऐसा होना मेरे पतिव्रत का व्यतिरेक होगा संन्यासी ! लोक-रक्षक सूर्य की शक्ति का व्यतिरेक होगा, अभी आप को सन्तोष न हो तो और कहूँ।

शंकर आप की महिमा अपार है भगवती ! अपने पतिव्रत से आप ने सूर्य को मध्यस्थ बना दिया। मुझे तनिक भी शङ्का आपकी शक्ति में नहीं है। आप सुख से चाहे जायें या यहीं अपने आसन पर रहें।

भारती वेद के अर्थ-निर्णय में आप लोग सफल हों। मेरा यहाँ अब कोई कार्य नहीं हैं। माला जिसके कण्ठ की सूखेगी मुझे बोध हो जायेगा और मैं आ जाऊँगी।

शंकर अन्तिम निर्णय के लिये···

भारती श्रुति के अर्थ के दर्शन के लिये। कण्ठ की विद्रूप माला श्रुति के अर्थ का प्रमाण बन जायेगी। आप सब का मंगल हो।

[भारती बालक के साथ भीतर चली जाती है। माधव उसके पीछे जाता है।]

शंकर उपासना और सादृश्य परक अर्थ से 'तत्वमसि' में भेद का प्रतिपादन आप नहीं कर सके। प्रत्यक्ष और अनुमान से भी जीव ब्रह्म की एकता खण्डित नहीं हुई। श्रुति के विषय में अपनी परम्परा के पुरुषों का नाम मैं अभी कह गया। नारायण की दसवीं पीढ़ी में मैं हूँ। विश्व में कर्म प्रधान है।

ब्रह्म नहीं, आपके किस आचार्य ने श्रुति के आधार पर यह प्रमाणित किया और यह भी कहा कि जीव और ब्रह्म में भेद है।

मण्डन जैमिनी···

शंकर उनके पूर्व···

मण्डन दत्तात्रेय···

शंकर उनके पूर्व··

मण्डन अद्वैत का कुल केवल एक सन्तान से चला है··वशिष्ठ के सौ पुत्रों में अकेले शक्ति बचे···बचे तो वह भी नहीं, अद्वैत कुल के वंश का लोप था जो शक्ति की पत्नी के उदर में उस समय पराशर न होते। पराशर के अकेले व्यास, वह भी उस कुल की कन्या से जिसके पितृगृह में श्रुति की वाणी कभी सुनाई न पड़ी, आहिताग्नि का जिस कुल ने कभी दर्शन नहीं किया।

शंकर उसी कन्या से पराशर ने जिस पुत्र को जन्म दिया उसने मिश्रित वेद का विभाजन कर लोक का कल्याण किया। यह आप स्वीकार करते हैं ?

मण्डन हाँ···इसे न स्वीकार कर···

शंकर प्रतापी सूर्य को अस्वीकार करना जिस प्रकार असम्भव है उसी प्रकार वेद, पुराण, महाभारत, ब्रह्मसूत्र के रूप में इस देश की विद्या के आदि सूर्य, आदि स्रोत का अस्वीकार करना भी असम्भव है। बिना उस सूर्य से पोषण लिए इस देश की विद्या की काया सूखती···सूखती·· समाप्त हो जायेगी। और बिना उस स्रोत के रस के वह रसहीन हो जायेगी। काव्य और कला सभी मिट जायेंगे।

मण्डन व्यास के अकेले शुकदेव···जिस कुल की हर पीढ़ी में एक सन्तान होती गई···शुक से वह समाप्त भी हो गई। तब शिष्यों की परम्परा चली। उसकी गणना हो सकेगी···पर जिस कुल की हर पीढ़ी में कई आये-गये उसमें यह गणना सम्भव न होगी।

शंकर [हँसकर] जैमिनी ने कर्म की प्रधानता आचार शुद्धि के लिये दी थी। शुद्ध आचार से अभेद दर्शन और सुगम है। वे मुनि त्रिकालदर्शी हैं। जगत के उपकारी तपोधन उन मुनि ने श्रुतिवाणी में शुद्धाचार की प्रतिष्ठा की, पर क्या उनकी यह प्रतिष्ठा भेद बुद्धि के अर्थ में हुई थी या अभेद बुद्धि के। मुझे विश्वास है अभेद बुद्धि के। मीमांसा वेदान्त का पूरक है। व्यास और जैमिनी श्रुति की दो आँखें हैं।

मण्डन जैमिनी के जिस अभिप्राय को कविजन न जान सके···उसे आप व्यक्त करें···मैं सारे पूर्वाग्रह छोड़कर उसे मान लूँगा जो वह संगत लगे।

शंकर मीमांसक ! श्रुति कहती है यज्ञ, दान, तप द्वारा वह परम-पुरुष जाना जाता है। ऐसे पुण्य कर्म वे सोपान हैं जो उसके समीप ले जाते हैं। जैमिनी का कर्म प्रतिपादन इसी अर्थ में है। बिना शुद्ध कर्म के आत्म-दर्शन कितनी बड़ी विडम्बना होगी ? भला यह सोचो तो। कर्म चित्त-शुद्धि के साधन हैं और चित्त शुद्धि आत्म-दर्शन में सहायक है।

मंडन आप के मत से व्यास और जैमिनी दोनों का मार्ग एक ही है ?

शंकर मुझे इसमें तनिक सन्देह नहीं। जैमिनी व्यासदेव के शिष्य थे···गुरु ने श्रुति का लक्ष्य आत्म-दर्शन में स्थापित किया,

जीव और ब्रह्म की एकता के प्रतिपादन का कार्य उनके सूत्रों से चला पर यह एकता कोरी वाग्विलास न थी, इसके लिए पुण्य कर्म साधन थे। ब्रह्मसूत्र श्रुति का लक्ष्य देता है और मीमांसा में उस लक्ष्य की प्राप्ति के साधन हैं।

मण्डन फिर जैमिनी ने कैसे कहा—"क्रिया को बतलाने वाली श्रुतियाँ हीं सफल हैं···"

शंकर इस कथन में किसी भेदवाद की गन्ध नहीं है मीमांसक! जैमिनी का ध्वजा लेकर चलने वाले मार्ग भूल गये, इसमें उन मुनि श्रेष्ट का क्या दोष है? जैमिनी को अनीश्वरवादी कहना सूर्य को अन्धकार का कारण बनाना होगा।

मण्डन अस्त होकर सूर्य अन्धकार का कारण नहीं बनता?

शंकर जैमिनी अस्त होने वाले नहीं। अन्धकार का कारण सूर्य का अस्त होना नहीं···पृथ्वी का सूर्य की ओर से मुख फेर लेना है। श्रुति सिद्ध ईश्वर का अपलाप जैमिनी ने कहीं नहीं किया मीमांसक! तर्क अनुमान पर आधारित ब्रह्म-विवेचन का खण्डन उन्हें करना ही था। श्रुति जिस विधि से उसे वचन और बुद्धि के परे मानती आई जैमिनी भी उसी विधि पर चले। वाणी और बुद्धि की गति जिस ब्रह्म तक नहीं है वह तर्क से सिद्ध या असिद्ध किया जाय इसी का खण्डन जैमिनी ने किया। उपनिषद की प्रतिष्ठा इस प्रकार उन दिव्य चक्षु ने की थी।

मण्डन [जैसे कुछ सूझ न रहा हो] ब्रह्मचारी! तपोधन जैमिनी के ध्यान के लिये मुझे समय चाहिए।

शंकर मुझे कोई आपत्ति न होगी।

[मण्डन के कण्ठ की माला की ओर देखते हैं।

पद्मपाद संकेत करते हैं। श्रुतिकेतु गहरी साँस खींचता है। अन्य जन परस्पर संकेत से मण्डन की माला की ओर एक दूसरे को आकर्षित करते हैं]

मण्डन फिर इस समय शास्त्रार्थ रुक जाय !

भारती [प्रवेशकर] अब किस फल के लिये आर्यपुत्र ! आपके कण्ठ की माला से सूर्य का अंश निकल गया।

मण्डन [चौंककर] भगवती ! [माला को हाथ से उठाकर देखते हैं।]

भारती दुःख किसी बात का नहीं आर्यपुत्र। काल की दुर्निवार गति में किसी का वश नहीं है। वाद में आज तक आप का प्रतिद्वन्दी सुना नहीं गया था। तब काल आपके अनुकूल था, आज प्रतिकूल है। श्रुति के प्रतिकूल जो काल हो जाता है तो दूसरों की बात ही क्या ?

शंकर सत्य कह रही हैं भगवती !

भारती श्रुति के विपरीत काल की गति न होती तो सौगत कहाँ से आते ? श्रुति विरोधी अनेक संघ कैसे बनते ? श्रुति में और कुछ हो या न हो पर लोक कल्याण की भद्र भावना तो होगी ही। लोक का कल्याण एक साथ इतने सम्प्रदाय कैसे कर सकेंगे जो परस्पर विरोधी हैं ? इस शास्त्रार्थ का परिणाम लोकसंग्रह में मंगल कर होगा। श्रुति से उत्पन्न अनेक मत श्रुतिकाय को सर्प बन कर काटते रहे हैं। ब्रह्मचारी शंकर और मीमांसक जो दो मार्ग से चल रहे थे अब एक मार्ग पर चलेंगे···गंगा में जैसे अनेक नदियाँ मिलकर सब गंगा बन जाती हैं वैसे ही श्रुति का नाम लेकर भी अनेक मार्गों से

चलने वाले अन्य जन भी आप दोनों के मार्ग पर जब आ-जायेंगे श्रुति का उद्धार होगा ।

शंकर — भगवती के पुण्य से यह होकर रहेगा । श्रुति का एकात्म तत्व देश भर की एकता का कारण बनेगा ! सौगत इसी देश में उत्पन्न हुये···पर सिन्धु भूमि में जो पश्चिम के यवन या यायावर भूखे भेड़ियों से आ गये । वैदिकों और सौगतों पर हिंसा-हत्या से जिस प्रकार वे व्यवहार कर रहे हैं···सब को धर्म छोड़ने को विवश कर रहे हैं। यदि समूचे देश में श्रुति का अभेद विधान न चला तो वे न रुकेंगे । सिन्धु से बढ़ कर गगा, शोण, ब्रह्मपुत्र तक उनका अधिकार होगा । भगवती उस दिन की कल्पना से भी मैं काँप रहा हूँ ।

भारती — बहुत पहले आपका नाम सुनकर मैं अनुमान कर सकी थी कि आप अपनी मुक्ति के लिये नहीं भारत भूमि की मुक्ति के लिये संन्यासी बने हैं । संन्यासी और भाष्यकार तो आप हो ही···कवि भी हो । आपकी इस धर्म विजय में देश भर के मत, जिनकी संख्या इस समय अनेक है, एक होंगे ।

शंकर — कुमारिका से हिमवान तक, उदयाचल से अस्ताचल तक मैं अभेद श्रुति की ध्वजा फहराने का संकल्प ले चुका हूँ भगवती !

भारती — संन्यासी वेश में धर्म के सेनापति हो मीमांसक ! पर आपकी विजय श्रुति के अभेद अर्थ की विजय है । लोक कल्याण में आप समर्थ बनें । इस युग के अकेले चक्रवर्ती ! धर्म की सेना अवश्य बनाना । भविष्य में केवल शास्त्रार्थ से काम न चलेगा । विदेशी यवन समूह के शस्त्रों को, उनकी हिंसा को रोकना पड़ेगा ।

शंकर आप देख लेंगी भगवती ! आज के सौगत भी मेरी पद्धति में शस्त्र धारण कर देश और धर्म के हेतु प्राण देगें ।

भारती मेरी अवधि इस लोक में अब पूरी हो गई । आर्यपुत्र के संन्यासी बन जाने पर मेरा पलभर भी जीवित रहना विधवा बन कर जीना होगा । यह दिन आयेगा इसका पता मुझे बहुत पहले चल गया था ।

शंकर इस शास्त्रार्थ और इसके परिणाम का पता आप को चल गया था ?

भारती एक समय मैं माता के साथ तीर्थ स्नान को गई थी । वहाँ जननी ने एक तपस्वी से मेरा भविष्य पूछा । पुत्री के भविष्य की चिन्ता माता का स्वभाव है संन्यासी···

शंकर सो तो है भगवती !

भारती इस कन्या का भाग्य आप दया कर बता दें । तपस्या से आप सब जानते हैं । आप···पति, धर्म, कर्म, पुत्र आप सब बतायें ।

शंकर हाँ···तब···

भारती मेरी ओर दया की दृष्टि डालकर वे कुछ काल जैसे ध्यान में मौन हो गये । फिर वे कहने लगे···

शंकर हाँ···भगवती !

भारती अवैदिक मतों से वेद मार्ग जब इस धरती से मिट जायेगा, उसके उद्धार के लिए ब्रह्मा इस धरती पर अवतार लेंगे । आर्यपुत्र का नाम उन्होंने लिया था पर मैं उस नाम का उच्चारण कैसे करूँ ?

शंकर विश्वरूप कहा था या मण्डन···!

भारती पहला···दूसरा तो पण्डितजन अपनी ओर से कहने लगे ।

शंकर फिर क्या कहा ?

भारती पार्वती ने जिस भाँति शिव को, लक्ष्मी ने विष्णु को, शची ने इन्द्र को, रोहिणी ने चन्द्र को···उसी प्रकार यह कन्या उन नरदेह धारी ब्रह्मा को प्राप्त करेगी। पति के साथ यज्ञादि धर्म, कर्म का संग्रह करेगी। वेदान्त के अभेद दर्शन को दृढ़ करने के लिये स्वयं भगवान महेश्वर नर देह धर कर इस धरती को पवित्र करेंगे।

शंकर उस तपस्वी ने इस शास्त्रार्थ की सूचना भी दी थी ?

भारती उस यती शंकर के साथ इस कन्या के पति का शास्त्रार्थ होगा, जिसमें पराजित होकर उन्हें संन्यास का व्रत लेना होगा।

शंकर उस तपस्वी ने आप को भी तो सरस्वती का अवतार कहा था।

भारती पति जहाँ अवतार लेगा पत्नी को भी वहीं जाना पड़ेगा ब्रह्मचारी ! यह सम्बन्ध जन्मान्तरों में भी कहाँ छूटता है !

शंकर तब यह शास्त्रार्थ मेरे और मीमांसक के बीच न होकर शिव और ब्रह्मा के बीच होता रहा है।

भारती इस विश्वास से लोक का कल्याण ही होगा।

मण्डन प्रतिज्ञा के अनुसार मुझे इसी स्थान पर संन्यास की दीक्षा दें ब्रह्मचारी ! इसी क्षण से मैं आप का शिष्य बनकर आपके विजय शंख की ध्वनि करूँ। मेरे सभी मनोरथों के अब आप ही कल्पवृक्ष हैं, आपकी चरण रज मेरे लिये नन्दन वन का पराग है, आपका यश मेरे भाग्य की आकाश गंगा है, भवसागर से पार लगाने वाले अब आप ही मेरे पोत हैं। संन्यासी की दीक्षा में अब आप बिलम्ब न करें।

शंकर भगवती ! आप सुख से धर्म की इस विधि में योग दें ।

भारती आर्यपुत्र को संन्यासी बनाने में मैं योग दूँ ब्रह्मचारी ! किस हृदय से कह रहे हो यह…पर तुम्हारे पास हृदय कहाँ है ?

शंकर काव्य के रस, शब्द और अलंकार योजना वाले मेरे स्तोत्र आप को मिलेंगे । उनमें आप मेरा हृदय देख लेंगी । अद्वैत का प्रतिपादक होकर भी शिव, विष्णु, भवानी और अन्य देवी, देवताओं की स्तुति काव्य वाणी में मैं कर चुका हूँ । हृदय के रस के लिये ही मैं निराकार ब्रह्म की साकार उपासना करता हूँ । मीमांसक का संन्यास लोक का कल्याण करेगा और मुझे भी बल देगा ।

भारती इसमें बाधा मुझे नहीं देनी है । पर जब तक मेरे कण्ठ में प्राण हैं आप उन्हें संन्यासी नहीं बना सकेंगे । मुझे अपने लोक चले जाने दें तब…

शंकर शास्त्रार्थ के आरम्भ में ही यह प्रतिज्ञा की गई थी ।

भारती अभी आपने उन्हें पराजित कहाँ किया ?

पद्मपाद उपस्थित पण्डित मण्डली साक्षी है ।

भारती [हँसकर] साक्षी तो मैं भी हूँ । मीमांसक अभी आधे अंग से हारे हैं । उनकी अर्धांगिनी अभी मैं आप लोगों के सामने हूँ ।

पद्मपाद तो क्या भगवती शास्त्रार्थ के हेतु उद्यत हो रही हैं ?

भारती ब्रह्मचारी आधी विजय लेकर क्या करेंगे ?

शंकर आप अपनी कामना कहें भगवती !

भारती शास्त्रार्थ में मुझे हराकर आप पूरे आर्यपुत्र को पराजित करें !

शंकर उपस्थित जन क्या कह रहे हैं ?

[कोई कुछ नहीं बोलता ।]

मैं आप लोगों से पूछ रहा हूँ क्या मुझे नारी के साथ शास्त्रार्थ करना होगा ?

[फिर सब लोग चुप रहते हैं ।]

भारती इसमें बाधा क्या है ब्रह्मचारी ?

शंकर आपके साथ शास्त्रार्थ यशस्वी पुरुष नहीं करेगा।

भारती पर क्यों ब्रह्मचारी ?

शंकर इसका उत्तर पण्डित जन दें। इस विषय में धर्म की आज्ञा क्या है ?

पद्मपाद वह नितान्त अशोभन होगा।

भारती आप ब्रह्मचारी के शिष्य हैं। इस प्रसंग में आप का बोलना भी अशोभन है। [मन्द हँसी]

पद्मपाद इतने विज्ञ बैठे हैं। कोई कुछ नहीं कहता···

भारती अवसर आने पर पण्डित जन चुप नहीं रहेंगे। ब्रह्मचारी अपने यश की बात न कहकर श्रुति के प्रमाण की बात करें।

शंकर मीमांसक की पराजय के बाद आपके साथ शास्त्रार्थ करने में मुझे संकोच आना स्वाभाविक है भगवती !

भारती इसमें आपका अपयश है। पर ऐसा क्यों है ? इसमें आप श्रुति का प्रमाण नहीं लेते। नारी को आप हीन मानते हैं। अपने पक्ष की रक्षा के लिये नर, नारी जो कोई वाद के हेतु आपके सामने आये आप को उसका स्वागत करना चाहिये।

शंकर उपस्थित पंडितजन क्या कहते हैं ? इसे सुनें भगवती !

भारती सात दिन के शास्त्रार्थ में पंडितजन कुछ नहीं बोले। मैं आपके सामने वाद के हेतु आ गई, तब आप पडितजन की आड़ ले रहे हैं।

मण्डन [गम्भीर स्वर में] मुझे अब संन्यास में सुख है देवी !

भारती मुझे भी उसी में सुख है आर्यपुत्र। संन्यासी शंकर पूरी विजय का यश ले। आधी विजय से न इन्हें सन्तोष होगा, न लोक को न श्रुति को !

शंकर [हँसकर] भगवती। मेरा यश अपने साथ वाद करने में आप बढ़ा सकेंगी।

भारती उसका अनुभव तुम्हें नहीं है बाल संन्यासी ! ब्रह्म भी अपनी माया में पूर्ण हैं, पुरुष अपनी प्रकृति में पूर्ण हैं, नर अपनी पत्नी में पूर्ण है। ब्रह्म की माया तुम्हारे सामने खड़ी हैं, जिसके साथ वाद तुम अपना कलंक मान रहे हो। पर क्यों ...श्रुति में इसके अनेक प्रमाण हैं।

श्रुतिकेतु किसके प्रमाण हैं भगवती ?

भारती ब्रह्म और माया...पुरुष और प्रकृति के वाद के प्रियदर्शन ! लोक मुद्रा के साथ अगस्त्य का वाद श्रुति प्रसिद्ध है...सुलभा और जनक का वाद पंडितजन जानते हैं। गार्गी और याज्ञ-वल्क्य का वाद ब्रह्म दर्शन का कल्पवृक्ष है।

कई स्वर सत्य है भगवती ! आप सत्य कह रही हैं।

शंकर यह कलियुग है। उपस्थित पण्डितजन युग भेद का भी ध्यान करें।

भारती श्रुति सनातन है योगी। जनक के आगे वाद के हेतु जैसे सुलभा खड़ी हुई थीं आपके आगे वैसे ही मैं खड़ी हूँ। [मन्द हँसी]

शंकर मैं राजा नहीं हूँ भगवती !

भारती अगस्त्य और याज्ञवल्क्य...

शंकर वे दोनों भी गृहस्थ ऋषि थे...

भारती [मन्द हँसी] तब आप नारी मात्र से भय करते हैं, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य और जनक नहीं डरे थे···आप डर रहे हैं। ब्रह्म माया से डरे···पुरुष प्रकृति से डरे, तब श्रुति की आशा क्या रहेगी ?

शंकर मैं फिर पूछ रहा हूँ पंडितजन इस विवाद को उचित मानते हैं ?

भारती हाँ संन्यासी···मैं उसी भूमि पर स्थिर हूँ जिस पर लोपा-मुद्रा, सुलभा और गार्गी स्थिर थीं।

शंकर पंडित मंडली को कहने दें भगवती !

कई स्वर हाँ···हाँ···हाँ···भगवती अलीक नहीं कह रही हैं। आप उनके साथ वाद करें ?

शंकर विज्ञजन के आदेश पर मैं नत मस्तक हूँ। किस विषय पर भगवती वाचा प्रस्तुत करेंगी।

भारती विद्या के किसी अंग पर संन्यासी···! जिसका मूल श्रुति में हो और ऋषि वाणी में जिसका उत्कर्ष हुआ हो।

मण्डन इसका फल अब क्या होगा देवी ?

भारती ब्रह्म स्वरूप कर्म के साधक मीमांसक कर्मकाय को फल की शृङ्खला से न बाँधे। विजय मेरी होगी और अपनी विजय मैं लोक कल्याण में बाल संन्यासी को सहर्ष सौंप दूँगी।

पद्मपाद यह पूर्व निश्चय कैसे हो रहा है भगवती ?

भारती धीरज धरें आपके प्रत्यक्ष जो हो रहा है उसका दर्शन करें। यह भी सुन लें कि उनके प्रति आपके हृदय के भाव जितने मधुर, जितने कोमल हैं, वैसे ही मेरे हृदय के भाव भी उनके प्रति हैं। आप उनके विश्वासी शिष्य हैं···मेरे साथ उनका इतने निकट का नाता नहीं है, फिर भी···

शंकर ऐसा न कहें, आप मेरी दयामयी जननी हैं···

भारती च्च···च्च···लौटा लें···लौटा लें यह शब्द···अन्यथा आपसे वाद मेरे लिए असम्भव हो उठेगा। कवि वाणी पर अंकुश नहीं रखते इसीलिए वे निरंकुश कहे गये हैं। अपने मुख से कहें संन्यासी !···आप इस शब्द को लौटा चुके।

कई स्वर हाँ···हाँ···इस शब्द को लौटा लें संन्यासी ! वाद के अवसर पर इस शब्द का···जननी शब्द का व्यवहार नहीं करना था। [उपस्थित **मंडली में परस्पर मन्द बातें चल पड़ती हैं।**]

शंकर अच्छी बात, लौटा रहा हूँ मैं उस शब्द को भगवती ! आप अब अपनी वज्र जैसी वाचा प्रस्तुत करें, जिसका आघात मेरे लिए असह्य हो। इस अवसर पर आप मुझ पर दया भी न करें। अपनी विजय आप प्रत्यक्ष कर देंगी अभी आप कह गईं। सबसे पहले आपकी विजय का दर्शन मैं करूं।

भारती अपनी विजय मैं आपको हर्ष से समर्पित कर दूँगी संन्यासी !

शंकर [**हँसकर**] और जो आपका दान मुझे रुचिकर न हो।

भारती लोक का कल्याण आपको विवश करेगा मेरा दान ग्रहण करने को। पहले कह चुके हैं आप कि आपका ऐसा अलौकिक तप निज के हित में नहीं लोक हित में सार्थक होगा।

शंकर सो तो है भगवती !

भारती फिर मेरा दान आप ग्रहण करें या न करें···इस निर्णय में भी आप स्वतन्त्र नहीं हैं। व्यक्ति जो लोक काय का अंग है उसके सभी कर्म लोक के···ब्रह्म के बन जाते हैं, वह तो निमित्त मात्र है। आप यह भी कह चुके हैं।

शंकर प्रस्तावना का विस्तार न कर अब आप वाचा उपस्थित करें।

कई स्वर सब की कामना...अब...यही है।

भारती कण्ठ की माला निकाल लें आर्यपुत्र!

कई स्वर मीमासंक के आसन पर...अब...आप आ जायँ भगवती!

भारती आर्यपुत्र माला निकाल कर रख दें।

शंकर मेरे कण्ठ में भी अब इस माला की आवश्यकता नहीं है।

भारती ना...ना...अभी आप न निकालें...आर्यपुत्र की माला से सूर्य का अंश निकल गया, वह काली पड़ गई। आप के कण्ठ की माला से भी जब वह अंश निकल जाय, वह भी काली पड़े तब...

शंकर मीमासंक के साथ वाद भर के लिये यह माला थी।

भारती मैं उनसे भिन्न कहाँ...मेरे इस कथन के प्रमाण भगवान सूर्य बन जायेंगे, जब आप के कण्ठ की माला भी म्लान होगी।

[मण्डन कण्ठ की माला निकाल कर आसन के एक कोने पर रख देते हैं। शंकर विस्मय के भाव में भारती की ओर देखते रहते हैं। श्रुतिकेतु दीवाल के सहारे खड़ा होता है। पद्मपाद अपना सिर हथेली पर रख लेते हैं। पण्डित मण्डली का जन-जन उत्सुक होकर जैसे किसी इन्द्रजाल में पड़ जाता है।]

शंकर अब विलम्ब मेरे लिए असह्य हो रहा है भगवती!

भारती भाव का वेग तनिक रोको संन्यासी! वाचा का शब्द रूप स्थिर कर लूँ।

पद्मपाद तब यह शास्त्रार्थ भगवान शंकर और भगवती सरस्वती में होने जा रहा है।

भारती शिव और सरस्वती को अपने हाथ का खिलौना न बना लो संन्यासी ! यों वे घटघट में हैं···जहाँ प्राण की गति है···जहाँ वाणी की गति है ।

शंकर आसन ग्रहण करें भगवती ! वाद चल पड़ने पर कितना समय लगेगा कौन जाने ?

भारती मैं जानती हूँ···फिर भी···बिना स्थिर आसन के यह कर्म वर्जित है ।

[पीछे की चौकी पर प्रसन्न मुद्रा में बैठकर सामने उत्तर दिशा में देखती हैं ।] हिमालय के सभी तीर्थ आप के देखे हैं ब्रह्मचारी !

शंकर हिमालय का एक-एक अंगुल तीर्थ है भगवती ! सब देख चुका हूँ···यह कैसे कहूँ आप से ··

भारती सीधे उत्तर जो यहाँ से चलें किस तीर्थ में पहुँचेंगे ?

शंकर आप की वाचा की भूमिका है यह तब···सीधे कहीं कोई मार्ग नहीं है । आपकी इस चन्द्रशालिका से प्राचीर के गोपुर तक पहुँचने में कई बार घूमना पड़ेगा ।

भारती थोड़े हेर-फेर से क्या इस सीध में कैलाश पहुँच जायेंगे ? भवानी और शङ्कर का निवास कैलाश···जिसके पश्चिम में कुबेर की अलका है ।

शंकर आपका यह भवन जिसे आप दिखाती रहीं···कुबेर के भवन से घट कर नहीं होगा । चित्रशालिका, चन्द्रशालिका और धवल गृह इससे उत्तम किस राजभवन में है । मीमासंक मण्डन के इस भवन से कुबेर के भवन का भ्रम किसे न होगा ?

भारती इसका उद्यान कुबेर के चैत्ररथ उपवन का भ्रम उत्पन्न करेगा

संन्यासी···आगे आप यही कहने वाले थे न ? पावस आदि सभी ऋतुओं के भवन जिसमें हैं···

शंकर अब तक मीमांसक की देह पर काषाय वस्त्र चढ़ चुका होता ···शिखा और सूत्र से यह मुक्त होते।

भारती मैं वाचा प्रस्तुत कर रही हूँ विज्ञजन सुनें···

शंकर [हँसकर] प्रश्न का स्वरूप इतनी देर तक स्थिर होता रहा।

भारती बाल संन्यासी सावधान हो जायँ···

शंकर चिन्ता न करें और अब आप बोलें···

भारती कामकला की संख्या और उनके लक्षण निरूपित करें ब्रह्मचारी! शुक्ल और कृष्ण पक्ष की किन तिथियों में उनके आश्रय युवती और तरुण के कौन अंग बनते हैं?

[भारती शंकर के मुख को ध्यान से देखने लगते हैं। मण्डन के साथ सभी उपस्थित जन जैसे चौंककर सजग होते हैं। शंकर के नेत्र नीचे अपलक होकर टिक जाते हैं। थोड़ी देर तक जैसे चन्द्रशालिका में बैठे जन साँस लेना भी भूल जाते हैं।]

मण्डन देवी!

भारती वादी को बोलना है···वाद के नियम के भीतर यहाँ सबको रहना है, आपको भी आर्यपुत्र! हाँ···ब्रह्मचारी! मेरी ओर देखकर उत्तर दो। वाद में धरती या आकाश दोनों ओर देखना मना है।

[शंकर फिर भी चुप हैं। उनकी आँखें धरती से ऊपर नहीं उठतीं।]

पद्मपाद ब्रह्मचारी से यह प्रश्न अनुचित है।

भारती वाद के नियम न भंग करो संन्यासी ! प्रश्न जो अनुचित है तो इसका प्रतिकार तुम्हारे गुरु करें ।

कई स्वर अन्य जन चुप रहें । ब्रह्मचारी शङ्कर···कह लें···फिर आप लोग अवसर के अनुकूल···अपनी वाणी का···विस्तार करेंगे ।

शंकर [भारती की ओर देखते हुए] मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ भगवती !

भारती जी···आप बाल ब्रह्मचारी है···लोक प्रसिद्ध बात हैं यह···

शंकर तब आपने ऐसा प्रश्न क्यों किया ?

भारती प्रश्न वादी के सामर्थ्य के भीतर करने का जो विधान होता तब तो वाद में किसी पक्ष में जय-पराजय का अवसर नहीं आता । उत्तर जिसकी शक्ति के बाहर होता है वही विजित भी होता है ।

शंकर पण्डित जन इस प्रसंग में क्या कहते हैं ?

भारती पहले हम दोनों अपना विषय स्थापित कर लें दिग्विजयी ! पण्डित जन के बीच में आने का अवसर अभी नहीं आया ।

कई स्वर हम···लोग···भगवती के मत से सहमत हैं ।

शंकर मीमांसक के साथ मेरे वाद के भीतर इस प्रकार का प्रश्न कैसे आयेगा ?

भारती यह विषय जो श्रुति वाह्य हो और ऋषी वाणी में इसका अनुबन्ध न हुआ हो तब आप यह कहें ।

कई स्वर भगवती ठीक कर रही हैं···

भारती इस विषय के सूत्र श्रुति में हैं और ऋषि वाणी के उत्कर्ष में यही विशाल वृक्ष बन कर सृष्टि स्वरूप बन गया है··· जिसके पत्र, पुष्प और फल में ब्रह्म का आनन्द रम रहा है ।

शंकर ऋषि वाणी से आप का संकेत क्या है ?

भारती श्रुति के बाहर आप इस विषय को नहीं मानते···

शंकर नहीं···

भारती उपनिषद दर्शन का यह विषय प्रधान अंग है···

शंकर हाँ···

भारती तब अकेले महर्षि वात्स्यायन का स्मरण दिलाना पर्याप्त होगा···दूसरे नाम भी आप कहें तो मैं प्रस्तुत करूँ। साहित्य, चित्र, मूर्ति, संगीत में सब रसों में प्रधान रसराज की पदवी इसी विषय को मिली है।

शंकर इस प्रश्न का उत्तर मैं अभी देता भगवती ! पर अभी उत्तर देने में मेरे यति-धर्म का विनाश हो जायेगा। योग बल से इसका उत्तर देने में मैं अभी भी समर्थ हूँ पर ऐसा करना लोक के समुद्र में आवर्त पैदा करना होगा। आप मेरा निवेदन मान लें।

भारती कहें···आपका निवेदन मैं [सिर पर हाथ रखकर] यहाँ रख लूँ।

शंकर आप मुझे एक मास की अवधि दें। फिर इस विद्या में भी आप अपनी निपुणता छोड़ देंगी।

भारती [हँसकर] स्वीकार है मुझे आपका निवेदन। अवधि के बन्धन से भी मैं आपको मुक्त कर रही हूँ। यह सम्भव नहीं कि उस रस में रमकर आप एक महीने में लौट आयें। सत् और चित् स्वरूप तो आप अभी हैं···उस रस में रमकर आप आनन्द स्वरूप को प्राप्त करेंगे जिसमें काल की सीमा मिट जायेगी।

शंकर यह सारा अवलेप मुझ पर लगा रही है भगवती !

भारती किसी दूसरे वाद में आपके साथ मुझे नहीं पड़ना है। अव-लेप नहीं आपका आनन्द स्वरूप, ब्रह्म का ही आनन्द स्वरूप होगा।

शंकर इस देह से संन्यास की मर्यादा का मैं निर्वाह करूँगा।

भारती [मन्द हँसी] एक महीने की अवधि का निवेदन जब आप ने किया तभी मैं समझ गई कि संन्यास की मर्यादा आप के उत्तर देने में बाधक हो रही है···नहीं तो जन्मान्तर के संस्कार आप योग से प्रत्यक्ष कर मेरे प्रश्न का उत्तर तभी दे देते। अब आप अपने शरीर को किसी सुरक्षित स्थान में छोड़ देंगे **[पद्मपाद की ओर संकेत कर]** आपके मेधावी शिष्य आपकी इस देह की रक्षा तब तक करते रहेंगे जब तक कि परकाय में प्रवेश कर···किसी तरुण राजकुमार या श्रेष्ठिकुमार की काया के माध्यम से कामकला का ज्ञान लेकर लौट नहीं आयेंगे।

शंकर संकल्प का अभाव रहेगा भगवती मेरे इस कार्य में···विधि और निषेध उसके लिये हैं जो तत्वदर्शी नहीं है।

भारती गोपियों के संसर्ग में जैसे भगवान कृष्ण में काम-वासना नहीं आई वैसे ही आप भी निर्लिप्त रहेंगे यह इतना आपके पक्ष में मैं कह दूँ।

[खिलकर हँसने लगती है। उपस्थित जन भी हँस पड़ते हैं। शंकर भारती के मुख की ओर देखते रहते हैं।]
आप की अमोघ शक्ति में···तपस्या में···अनासक्त बुद्धि में सन्देह नहीं करती ब्रह्मचारी मैं···द्वापर में ऐसे एक कृष्ण निकले···कलियुग में आप निकले हैं। ठीक ही है ऐसे महापुरुष जो प्रलय तक लोक के दीप-स्तम्भ बने रहें विरले

होते हैं···आप उनमें हैं। लौटकर आप मेरे प्रश्न का उत्तर देकर आर्यपुत्र को संन्यासी बना लेंगे।

शंकर आप के मुख से जो ज्योति निकल रही है उसका संकेत तो कुछ और है···

भारती पर काय में प्रवेश कर, उसकी रमणियों से कामकला में अधीत होकर जब आप लौटेंगे मैं आपके यहाँ पहुँचने के कुल एक दण्ड पूर्व देह छोड़कर अपने लोक चली जाऊँगी। इस धरती पर मैं जीवित रहूँ और आर्यपुत्र संन्यास ले लें यह न हो सकेगा योगी! आपकी कीर्ति तब तक रहे जब तक आकाश में चन्द्र सूर्य रहें और धरती पर गंगा···

[पर्दा गिरता है।]

तीसरा अङ्क

[अलवाई नदी के तट पर, वृक्ष की छाया में काषाय वस्त्र-धारी शंकर व्याघ्रचर्म पर बैठे हैं। नदी के प्रवाह की मन्द ध्वनि सुनाई पड़ रही है। जल पक्षी बोल रहे हैं और उनके पंख के खुलने-सिकुड़ने की ध्वनि भी रह-रह कर सुनाई पड़ती है। नदी के उस पार जहाँ तक दृष्टि जाती है, हरे खेत और वृक्षों की पाँति पृथ्वी पर हरे रंग के परिधान जैसे देख पड़ते हैं। शंकर के पीछे कालटी ग्राम है। ग्रामवासी जन समूह का कोलाहल सुनाई पड़ता है। एक गृह के द्वार के बाहर सटकर चिता जल रही है। शंकर कभी नदी की ओर दायें सिर घुमाकर देखते हैं और कभी बायें जलती चिता की ओर। चिता की लपटों से दग्ध मांस की गन्ध आ रही है, अस्थि के चटककर टूटने की ध्वनि भी कभी-कभी सुनाई पड़ती है। शंकर के सामने पर्वत पर चन्द्रमौलीश्वर महादेव के मन्दिर में दोपहर के घण्टे बजते हैं। शंकर हाथ जोड़कर मन्दिर की ओर नत मस्तक होते हैं। शंकर के मुँह से 'ओउम्' के साथ श्रुति मंत्र के शब्द निकल जाते हैं। चिता के दोनों ओर कुछ नर-नारी रुकते हैं, हाथ से शंकर और चिता की ओर संकेत कर, आँखों के संकेत और मद्धिम ध्वनि में कुछ कहते-सुनते निकल जाते हैं। आने-जाने वालों का स्थान दूसरे नये जन लेकर ऊपर की क्रिया करते रहते हैं।]

शंकर ओउम् तत्सत्...माता के अन्त समय उपस्थित होकर...अपने हाथ उनके दाह का वचन देकर...इस गृह से गुरु की खोज में निकला था...वह पूरा हो गया। जननी संतुष्ट हो गई...

[दो वृद्ध श्वेत केश और कूर्च में प्रवेश करते हैं। उनके पीछे एक वृद्धा भी हैं। शंकर के आगे तीनों खड़े होते हैं पर उनके वहाँ पहुँचने का बोध जैसे शंकर को नहीं होता...उनकी आँखें नदी की धार पर हैं।]

वृद्धा **[एक वृद्ध का हाथ पकड़कर]** कितने दिन पर यह शिवगुरु का पुत्र लौटा है?

वृद्ध नवाँ वर्ष भी आधा बीत गया है।

शंकर **[जैसे ध्यान टूटने पर]** ओउम्...**[उपस्थित लोगों की ओर देखकर]** नमो नारायण...

वृद्ध नमो नारायण स्वामी! गृह के द्वार पर ही शव जला दिया।

शंकर आप लोग इसी ग्राम के हैं?

दूसरा अरे! रे! तुम अपने कुल के वृद्धों को भी नहीं पहचानते...

पहला जो तुम्हारे पिता से आयु और पद दोनों में बड़े हैं। हमारा भाग्य जो न फूटता तो अपने कुल का आठ वर्ष का बालक संन्यासी कैसे बनता?

शंकर आप लोग कृपा कर अपना परिचय तो दें।

दूसरा नम्बूदरी कुल के इस समय के सब से वृद्ध और तुम्हारे कुल के वर्तमान मुख्य पुरुष रामस्वामी नम्बूदरीपाद हैं यह... तुम्हारे पितामह होते हैं।

शंकर **[हाथ जोड़ कर]** और आप...

रामस्वामी यह भी पद में तुम्हारे पितृव्य चन्द्रमणि शिवगुरु से दस

वर्ष बड़े हैं। [वृद्धा की ओर संकेतकर] यह देवी इनके अग्रज की विधवा हैं।

शंकर तब तो आप सब मेरे पिता के भी प्रणम्य हैं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

वृद्धा पर आशीर्वाद क्या दें। [धरती पर बैठकर सिसकने लगती है।]

शंकर संन्यासी के सामने रोना मना है माता! ना···ना···क्या कर रही हैं? इसका पाप मुझे लगेगा।

वृद्धा [हाथ फेंक कर] भले पाप लगे तुम्हें···हम सब को पाप में छोड़कर तुम पुण्य कमाने क्यों चले गये? वेद पढ़े थे घर पर पाठशाला चलाते···हमारा धर्म बनता···कुल का नाम होता। प्रणाम कर रहे हो। हम आशीर्वाद क्या दें? पुत्र का दें तो वह होता नहीं, धन का, बल का, किस फल का आशीर्वाद लोगे? आशीर्वाद भी वही होता है बेटा! जो कुल के, वंश के, जाति के काम आये···तुम तो सब छोड़ गये।

रामस्वामी रुको···सुनो···मुझे पूछने दो। [वृद्धा सिर झुकाकर चुप होती है।] घर के द्वार पर दाह कर दिया शंकर···

शंकर संन्यासी का घर कहाँ होता है···और करता क्या···अकेले नदी तट कैसे ले आता? आप लोगों ने जब अग्नि तक नहीं दी तो अकेले दूसरा क्या होता? शव को हाथ लगाने जब कोई नहीं आया···

चन्द्रमणि दाहकर्म संन्यासी के हाथ किसी युग में कभी हुआ था··· तुम्हारे कुल में इतने पुरुष आज भी हैं कि एक ही साथ वे दस शव उठाकर श्मशान पर दाह कर सकते हैं।

शंकर घर छोड़ते समय माता ने आँचल पसार कर यह भिक्षा माँगी

थी कि उनके अन्त समय मैं उनके निकट रहूँ। पुत्र के सहारे उनका चोला छूटे और उसी के हाथ उनके शव का दाह हो। केरल-नरेश-राजशेखर इसके साक्षी हैं। राजा में देवता का अंश आप लोग मानते हैं कि नहीं?

रामस्वामी धर्मशास्त्र की बात हम सब मानते हैं।

शंकर आप लोगों के राजा ने माता की उस दशा पर करुणा के भाव से मुझे यह वचन देने के लिये कहा, नहीं तो इस बन्धन को लेकर जाने की मेरी इच्छा नहीं थी। जननी को जो वचन देकर गया उसका निर्वाह जो न करता तो मेरे मन को शान्ति कहाँ मिलती?

चन्द्रमणि हम दोनों परसों दोपहर को ही प्रवास में चले गये...

रामस्वामी अभी लौटे हैं...हाथ-पैर भी नहीं धोये और यहाँ आ गये... ज्ञातिजन से राजा की आज्ञा की बात तो कह देनी थी।

शंकर आप इस कुल के मुख्य पुरुष हैं...मैं अलवाई को साक्षी बनाकर [**नदी की ओर हाथ उठाकर**] चन्द्रमौलीश्वर को साक्षी बनाकर [**पर्वत पर बने मन्दिर की ओर हाथ से संकेत कर**] और लोकनायक सूर्य को साक्षी बना कर [**ऊपर हाथ उठाकर**] आप को शाप दे रहा हूँ कि आपके कुल में अब सदैव शवदाह गृह के द्वार पर ही होता रहेगा। जब तक इस नदी में जल रहेगा मेरी बात मिथ्या न होगी।

[**वृद्धा दोनों हाथों से सिर पीटती है। दोनों वृद्ध एक दूसरे के कन्धे पर सिर टेक देते हैं।**]

वृद्धा शिवगुरु की बहू की तरह सब अपने द्वार पर जलेंगे, कौन

मानेगा यह बात ! [शंकर की ओर क्रोध से देखती है। उसकी लाल आँखों से जल बहता है।]

शंकर देखना माता क्या होगा ? अब तो बात मेरे मुँह से निकल गई।

रामस्वामी कौन कहता है तुम्हें पिटिर-पिटिर करने को ? तभी कहा इसे मत ले चलो। सिर चढ़ाये रहते हैं। चली आई यहाँ पंचायत करने। उठो···उठो···चली जाओ तुम अब यहाँ से···

चन्द्रमणि तुम जाओ भाभी यहाँ से···

रामस्वामी चन्द्रमणि ! छोड़ो उसे। आओ हम दोनों संन्यासी के पैर पकड़कर इस शाप से त्राण लें।

शंकर शंकर ने भस्मासुर को वरदान दिया था तात ! लौटाने की शक्ति होतो तब वन-पर्वत भागते क्यों फिरे होते ? मोहिनी रूप से उसे मोहित कर···उसी को विष्णु ने भस्म न कर दिया होता तो भवानीपति अब तक उसके सामने भागते ही रहते। लौटाने की शक्ति मुझ में नहीं है।

चन्द्रमणि घर के ऊपर का काठ उजाड़ कर तो यह चिता बनी है !

शंकर दैव ने सहायता की तात ! नहीं तो मैं तो घर ही भस्म करने जा रहा था। मन में तो यही आया कि घर में आग लगा दूँ। उसके साथ माता भी जलें। कुशल हुई माता के वियोग और ज्ञातिजन के दारुण व्यवहार पर भी विवेक की कुछ किरणें बची थीं···किसी प्रकार शव को अकेले द्वार के बाहर कर दिया।

रामस्वामी हे भगवान् ! जो कहीं घर भस्म किये होते शवदाह के लिये

तो तुम्हारे शाप से इस कुल के घर हर बार के शवदाह में बार-बार भस्म होते रहते···

शंकर अग्नि के लिये द्वार-द्वार घूमता रहा मैं, पर कहीं अग्नि नहीं मिली तो काठ कहाँ मिलता ?

रामस्वामी धर्म के तुम्हारे इस नये रूप में कुल-जन विश्वास न कर सके···पूर्वजों का धर्म किसी प्रकार न छूटे इसी में वे कठोर बने···इसे उनका अपराध न मानो···तुम्हारे पिता-पितामह का धर्म बचाने में वे लगे रहे। वे क्या जानते थे कि यह वृष पर्वत [**पर्वत की ओर संकेत कर**] हिलेगा पर तुम्हारा संकल्प न हिलेगा। इस प्रवास में तुम्हारे यश का विस्तार सुनकर चित्त अघा गया। तुम अब भी दया करो। जो कर सको करो। कुल के अपराधी जन भी तुम्हारी कृपा···तुम से अपना उपकार चाहते हैं···तुम जगत का उपकार कर रहे हो।

वृद्धा अब यह कहीं नहीं जाने पायेंगे···इसी जगह इनकी कुटी बनेगी···इसी में रहेंगे···नित्य हम लोगों को दर्शन तो मिलेगा।

शंकर [**हँसकर**] संन्यासी का दर्शन गृहस्थ के लिए अशुभ होता है माता ! ऐसी इच्छा मत करो।

[**वृद्धा अवाक् होकर कभी शंकर के, कभी साथ के दोनों पुरुषों के मुख की ओर देखती है।**]

रामस्वामी चिता के पास चन्द्रमणि को भेज देता हूँ··· तुम हमारे घरों को अपने चरण-कमल से पवित्र कर दो।

वृद्धा वह जाकर चिता के पास क्या करेंगे···वह जेठ हैं···चिता का धुआँ भी इन्हें नहीं लगना चाहिए।

रामस्वामी [हँसकर] सच कह रही हो···धर्म की यह बात मुझे नहीं सूझी ।

वृद्धा चल कर वहीं बैठ जाती हूँ । [चिता की ओर संकेत कर] दूध जैसी उजली लपट क्यों निकल रही है ? ऐसा कहीं नहीं देखा···कहीं नहीं···

[सब विस्मय में उधर देखते हैं ।]

रामस्वामी योगी पति और योगी पुत्र जिस भगवती का हो उसकी चिता से जो लपट निकलेगी उसका रंग शिव के शरीर जैसा श्वेत ···हिम या कपूर जैसा होगा ही । जन्मान्तर के पुण्य से शिवगुरु जैसा पति मिला । शंकर ने जिसे सर्वज्ञ पुत्र का दान स्वप्न में दिया । उसके विवाह के लिए मघ पंडित मेरे पास आये थे कि अपने कुल से मैं उनकी कन्या के लिये वर दूँ ।

शंकर मघ पण्डित किसका नाम है तात !

रामस्वामी तुम्हारे नाना का । अखिल वेद, वेदान्त, योग और धर्मशास्त्र जान गये । अपने नाना का नाम नहीं जाने···

शंकर दधीचि और त्रितल जैसे दैवज्ञों ने···मैं पाँच वर्ष का भी नहीं था···माता को आठवें वर्ष में ही जो भयानक अरिष्ट बता दिया । तब से मृत्यु की छाया छोड़कर और कुछ जानने का अवसर मिला होता तो कुल के गुरुजन से अपरिचित मैं कैसे होता ?

रामस्वामी मघ पण्डित की कन्या तुम्हारी माता थीं । शिवगुरु के साथ उनका विवाह मैंने ही स्वीकार किया था ।

शंकर अन्त समय में आप भी उन्हें भूल गये ।

रामस्वामी मेरे जन्मान्तर के पाप इसके कारण बने। कल संध्या को ही लौटना था। होनी टलने की तो होती नहीं। आज एक पहर रात रहे चन्द्रमणि के साथ चला। चित्त में कोई भय बस गया। मार्ग में इनसे कई बार कहा....कल आ गया होता तो तुम्हारे लिए पूर्वजों की विधि मैं छोड़ देता।

शंकर माता मेरी प्रतीक्षा कर रही थीं तात! पाँच दिन पहले ही उन्हें मरना था...शरीर की गति तो यही कह रही थी। किसी क्षीण तन्तु में उनका प्राण अटका रह गया।

वृद्धा अपने पुत्र में...माता का प्राण पुत्र में अटका रहता है बेटा!

शंकर मुझे भी यही लग रहा है माँ! आज जो न आ जाता तो अभी वे मुझे विश्वास है आज भी न मरतीं। देखती रहतीं द्वार की ओर कि मैं कब आता हूँ। सात दिन पच्चीस कोस नित्य चलता रहा हूँ नहीं तो माता से भेंट न होती और वचन-भंग का दोष तो मुझे लग ही जाता।

रामस्वामी अब तुम्हें दोष क्या लगेगा। इसी आयु में लोग तुम्हें शंकर का अवतार कहने लगे हैं। शिव ने तो कलि में ब्रह्मा की पूजा मिटा दी और तुमने मण्डन पण्डित को हरा दिया।

शंकर अपनी प्रशंसा अपने कान सुनने में भी पाप लगता है तात! आप अब अपने मुँह मेरा यश न कहें।

रामस्वामी [हँसकर] अच्छी बात, अब उठो बन्धुजन के गृह को अपने चरण से पवित्र करो। चन्द्रमणि तुम किसी को चिता के पास भेज दो।

चन्द्रमणि चिता के दोनों ओर कुल-जन खड़े हैं। मैं जाकर किसी को दिन भर के लिए वहाँ नियुक्त कर देता हूँ।

वृद्धा [उठकर चिता की ओर चलती हुई] मैं तो दिन भर वहीं बैठी रहूँगी।

[चन्द्रमणि का प्रस्थान]

रामस्वामी अब तुम उठो वत्स !

शंकर चिता में जब लपटें नहीं रहेंगी...लाल अङ्गारे रह जायेंगे... मैं उसकी प्रदक्षिणा कर इस स्थान से हटूँगा। संन्यासी होकर भी उसी माता का पुत्र हूँ तात ! मुझे जन्म देने का फल जिसे कुछ भी नहीं मिला।

रामस्वामी तब मैं भी यहीं बैठता हूँ। [शंकर के सामने धरती पर बैठ जाते हैं।]

शंकर आप चलें। दूर की यात्रा से आये हैं। थोड़ा विश्राम करें...

रामस्वामी जितने दिन अब इस कण्ठ में प्राण रहेंगे तुम्हारी माता मुझे अशान्त करती रहेंगी। प्रमाद में उसके प्रति अपने कर्तव्य से मैं क्यों चूका ? शंकर भगवान् जानते हैं झूठ कहूँ तो मेरी आँखें चली जायें। किसी ने मुझे बताया नहीं कि वह अब उस लोक की ओर जा रही हैं।

शंकर कभी किसी जन्म में वह कहीं चूकी होंगी...[आँखों से आँसू निकलने लगता है। स्वर भारी हो जाता है]

रामस्वामी संन्यासी बन चुके हो वत्स ! इस वेश की महिमा में आँसू नहीं हैं।

शंकर (दुःख की हँसी) वेदान्त में मोक्ष भावरूप है तात !

रामस्वामी ठीक है जननी की चिता धधक रही हो...उस समय कौन पुत्र धीर रह सकेगा ?

शंकर तप से, योग से धीर बना जाता है...प्रकृति का सत्य तो यही

है कि जब जो परिस्थिति देही की आये सुख या दुख की, उसके अनुरूप भाव का स्वाद उसे मिले। रुदन और हास्य भाव के स्वाद मात्र हैं।

रामस्वामी कुछ दिन तो अब यहाँ रुकोगे···

शंकर यह जगत हर पल गतिमान है···रुकने का स्वभाव इसका नहीं है।

रामस्वामी सो तो है पर रुकते भी आये हैं। रात-भर नींद में···

शंकर [मन्द हँसी] नींद में भी कहाँ रुकते हैं···शरीर एक स्थान पर रहता है पर उसका स्वामी कितने लोकों में घूमता रहता है।

रामस्वामी कोई बात नहीं। शंकर का शरीर ही यहाँ अपनी जन्म की भूमि पर रहेगा···

शंकर आयु थोड़ी है···लोक के उपकार में बीत जाय···एक क्षण भी निष्फल न जाय इसकी कामना करें···आप के शंकर का जन्म जिस कार्य के लिए हुआ वह पूरा हो।

रामस्वामी चन्द्रमौलीश्वर उसे पूरा करेंगे। जिनके प्रसाद से तुम माता-पिता को मिले थे।

[शंकर चिता की ओर देखते हैं। वृद्धा वहाँ जाकर बैठती है।]

शंकर वहाँ देखें···चिता के इतने निकट बैठ गई···देख रहे हैं लपटें घूमकर उनके कितने समीप आ रही हैं। आँच भी नहीं लगती उन्हें···

रामस्वामी पचास वर्ष से अधिक समय बीता उसे भोजन बनाते। आँच सहने का उसका अभ्यास हो गया है। कालटी में लोग

नित्य मनोविनोद करते हैं···अग्नि के साथ उसकी क्रीड़ा की बातें कहकर। हथेली पर अंगारा लेकर वह गाँव के सभी घर घूम चुकी हैं।

शंकर और नहीं जला हाथ तब वे योग जानती हैं।

रामस्वामी हा···हा···हा···भले कहे योग जानती हैं···जीव के स्वभाव में ही योग और दर्शन है। बन्दर अपनी प्रकृति से ही योग सीखता है, सिंह, हाथी, पक्षी सभी योगी हैं··· मनुष्य ने योग का पहला पाठ इन्हीं से पढ़ा होगा। झूठ तो नहीं कहा ?

शंकर जो जीव हमारे भीतर है वहीं उनके भीतर भी है···भेद तो केवल नाम, रूप का है। परम तत्व एक है जो सृष्टि के नाना रूपों में प्रकाशित हो रहा है। सभी कर्म, सभी अनुभव, सभी स्वाद उस एक के हैं।

रामस्वामी तुम्हारे यहाँ पहुँचने पर कितनी देर जीवित रहीं ?

शंकर मेरे यहाँ पहुँचने की प्रतीक्षा भर ही उनकी अवधि थी। सात दिन पहले रात में स्वप्न देखा···

रामस्वामी हाँ···

शंकर कावेरी के तट पर शिव-मन्दिर में तीन शिष्यों के साथ सोया था···देखता हूँ माता किसी पुरुष के साथ प्रसन्न चित्त चली आ रही हैं। मुझे देखकर बोलीं 'पहचानते हो यह कौन हैं' उस पुरुष की ओर अनुराग का आकर्षण तो हो रहा था पर पहचान न सका मैं।

रामस्वामी तुम तीन वर्ष के भी न हुए थे तभी तुम्हारे पिता चले गये।

शंकर उनका रूप मुझे माता ने स्वप्न में दिखाया। [दाईं भौंह

के ऊपर उँगली रखकर] वृत्त के चतुर्थांश के बराबर चोट का चिह्न था।

रामस्वामी [हँसकर] सुनो, हम लोग कहा करते थे शिवगुरु के ललाट का यह चिह्न तनिक और ऊपर होता तो वह चन्द्रमौलि बन जाते।

शंकर [कण्ठ के ऊपरी भाग को स्पर्श कर] यहाँ त्वचा मेघ के रंग की थी।

रामस्वामी हाँ थी···शिव के नील कंठ की भाँति वे भी नील कंठ थे। यह सब तुमने स्वप्न में देख लिया···

[विस्मय की मुद्रा]

शंकर उनके शरीर की कोई स्मृति तब तो मुझे थी नहीं···

रामस्वामी हाँ···तब···

शंकर माता को सुखी···प्रसन्न तो देखने का कभी अवसर आया नहीं···उनकी आँखें बराबर गंगा-यमुना बनी रहीं···दैवज्ञों से मेरा अरिष्ट सुनकर वे बराबर भयभीत बनी रहीं। रात को उन्हें नींद कब आई मैं न जान सका। मेरी नाक से उनका कान कई बार छू गया और मैं जाग गया। तब तो नहीं समझ पाता था अब समझता हूँ नींद में भी मेरी आयु का उन्हें विश्वास नहीं था और वह कान से मेरी साँस की गति का अनुभव करती थीं।

रामस्वामी सो तो है···देह पर हाथ रखने से तुम्हारे जाग जाने का भय था। जी नहीं मानता था तो बेचारी कान से तुम्हारी साँस का अनुभव करती थीं।

शंकर सुखी और प्रसन्न मुझे वह स्वप्न में ही दिखाई पड़ीं।

नित्य मनोविनोद करते हैं···अग्नि के साथ उसकी क्रीड़ा की बातें कहकर। हथेली पर अंगारा लेकर वह गाँव के सभी घर घूम चुकी हैं।

शंकर और नहीं जला हाथ तब वे योग जानती हैं।

रामस्वामी हा···हा···हा···भले कहे योग जानती हैं···जीव के स्वभाव में ही योग और दर्शन है। बन्दर अपनी प्रकृति से ही योग सीखता है, सिंह, हाथी, पक्षी सभी योगी हैं··· मनुष्य ने योग का पहला पाठ इन्हीं से पढ़ा होगा। झूठ तो नहीं कहा?

शंकर जो जीव हमारे भीतर है वहीं उनके भीतर भी है···भेद तो केवल नाम, रूप का है। परम तत्व एक है जो सृष्टि के नाना रूपों में प्रकाशित हो रहा है। सभी कर्म, सभी अनुभव, सभी स्वाद उस एक के हैं।

रामस्वामी तुम्हारे यहाँ पहुँचने पर कितनी देर जीवित रहीं?

शंकर मेरे यहाँ पहुँचने की प्रतीक्षा भर ही उनकी अवधि थी। सात दिन पहले रात में स्वप्न देखा···

रामस्वामी हाँ···

शंकर कावेरी के तट पर शिव-मन्दिर में तीन शिष्यों के साथ सोया था···देखता हूँ माता किसी पुरुष के साथ प्रसन्न चित्त चली आ रही हैं। मुझे देखकर बोलीं 'पहचानते हो यह कौन हैं' उस पुरुष की ओर अनुराग का आकर्षण तो हो रहा था पर पहचान न सका मैं।

रामस्वामी तुम तीन वर्ष के भी न हुए थे तभी तुम्हारे पिता चले गये।

शंकर उनका रूप मुझे माता ने स्वप्न में दिखाया। [दाईं भौंह

के ऊपर उँगली रखकर] वृत्त के चतुर्थांश के बराबर चोट का चिह्न था।

रामस्वामी [हँसकर] सुनो, हम लोग कहा करते थे शिवगुरु के ललाट का यह चिह्न तनिक और ऊपर होता तो वह चन्द्रमौलि बन जाते।

शंकर [कण्ठ के ऊपरी भाग को स्पर्श कर] यहाँ त्वचा मेघ के रंग की थी।

रामस्वामी हाँ थी···शिव के नील कंठ की भाँति वे भी नील कंठ थे। यह सब तुमने स्वप्न में देख लिया···

[विस्मय की मुद्रा]

शंकर उनके शरीर की कोई स्मृति तब तो मुझे थी नहीं···

रामस्वामी हाँ···तब···

शंकर माता को सुखी···प्रसन्न तो देखने का कभी अवसर आया नहीं···उनकी आँखें बराबर गंगा-यमुना बनी रहीं···दैवज्ञों से मेरा अरिष्ट सुनकर वे बराबर भयभीत बनी रहीं। रात को उन्हें नींद कब आई मैं न जान सका। मेरी नाक से उनका कान कई बार छू गया और मैं जाग गया। तब तो नहीं समझ पाता था अब समझता हूँ नींद में भी मेरी आयु का उन्हें विश्वास नहीं था और वह कान से मेरी साँस की गति का अनुभव करती थीं।

रामस्वामी सो तो है···देह पर हाथ रखने से तुम्हारे जाग जाने का भय था। जी नहीं मानता था तो बेचारी कान से तुम्हारी साँस का अनुभव करती थीं।

शंकर सुखी और प्रसन्न मुझे वह स्वप्न में ही दिखाई पड़ीं।

रामस्वामी [अपनी बाँह पर हाथ फेर कर] रोमांच हो गया मुझे तुम्हारा यह स्वप्न सुन कर।

शंकर रोमांच तो मुझे स्वप्न में ही हो गया था···जागने पर भी रोमांच हुआ। पहला रोमांच सुख के स्वाद का था···दूसरा दुःख और भय के स्वाद का। यहाँ घर में पहला चरण डालते ही उनके कण्ठ की कातर वाणी सुनाई पड़ी 'शं···क···र'। लगता है अन्त समय में उनके सुनने की शक्ति बढ़ गई होगी। रात को भी घर का द्वार खुला रहा बराबर···वन्य जीव जो घर में आये होंगे सब उनके शंकर बन गये होंगे।

रामस्वामी तुम्हारे पहुँचते ही चल बसीं या कुछ कहा सुना ?

शंकर मेरे हाथ के कमण्डलु को देखते ही उन्होंने मुँह खोलकर हाथ की अर्धाञ्जलि उस पर रख दी। माता को प्यास लगी है···पता नहीं कितने दिन से···मेरा हाथ काँपने लगा, नीचे धरती और ऊपर आकाश भी काँप रहे थे। प्रयाग में कमण्डलु जो गङ्गा में भरा था, माता के अन्त समय के लिये वह काम आ गया। गंगा-जल है माँ ! यह कह कर मैं उनके मुख में जल गिराने लगा और वह पीती गई। कमण्डलु का आधा जल पी लेने पर काँपते शब्द उनके मुँह से निकले···गं···गा···ज···ल···

रामस्वामी [आँखों से जल गिराते हैं] संन्यासी पुत्र से गंगा जल मिल गया। पुत्र अन्त समय के लिये ही होता है।

शंकर 'हाँ माँ ! गंगा-जल है···प्रयाग से लिये आ रहा हूँ,' मेरे मुख से निकला उनके ओठों पर तृप्ति का हास्य खेल गया और अपने ही उठकर बैठ जाने की चेष्टा करने लगीं।

हाथ से सहारा देकर उठाया। पीछे बैठ गया ··अपनी देह का भार मेरी देह पर डाल कर बोलीं 'आ गये शंकर···तुम आ गये···जो कह कर गये···उसे भूले नहीं···अब मुझे स्वर्ग मिल जायेगा।'

रामस्वामी चिता से श्वेत लपटें निकल कर कह रही हैं कि उन्हें स्वर्ग मिल गया। कल लौट आया होता तो कुल की देवी के अन्त समय कुछ तो कर पाता।

शंकर मुझे देखते ही उनके जन्म-जन्म के अभाव मिट गये। आप विश्वास न करेंगे मुझसे हँस-हँसकर बात करने लगीं जो स्वप्न मुझे कावेरी तट के शिव मन्दिर में दिखाई पड़ा वही स्वप्न उसी समय माता को यहाँ दिखाई पड़ा।

रामस्वामी शंकर! तीन ऊपर नब्बे वर्ष बीत गये ऐसा विस्मय न देखा न सुना···जो स्वप्न तुम्हें वहाँ दिखाई पड़ा वही तुम्हारी माता को यहाँ! [**शंकर के मुख की ओर उत्सुक होकर देखते रहते हैं**]

शंकर मेरे सहारे आँखें मूँद कर वे अपना स्वप्न सुनाती रहीं। यह भी सम्भव है वह स्वप्न न रहा हो···

रामस्वामी तब रहा क्या होगा?

शंकर चित्त से उन्हें पति और पुत्र का संसार मिल गया। नींद तो उन्हें आई न होगी कि स्वप्न देखा हो। उनके भावलोक में जो उदय हुआ वही वहाँ मेरा स्वप्न बन गया।

रामस्वामी भगवान् की लीला कहो इसे···

शंकर बस यही···इसी विश्वास में परम सुख है।

[**चन्द्रमणि के साथ पाँच जन और प्रवेश करते हैं।**]

चन्द्रमणि कुल-जन तुम्हारी कृपा के लिये आये हैं ब्रह्मचारी ! इनका अपराध चित्त में न ले आओ।

कई जन हम हाथ जोड़ कर···इसकी याचना कर रहे हैं।

शंकर कोई किसी के साथ अपराध नहीं करता। सभी अपनी आत्मा के साथ अपराध करते हैं। आप लोगों के प्रति मेरे मन में कोई विकार नहीं है।

चन्द्रमणि भगवान् के हाथ की कठपुतली बन कर हम सब नाच रहे हैं। कर्म के चक्र में संलग्न प्राणी···घूम रहे हैं···घूम रहे हैं ···घूम रहे हैं। इस चक्र का अन्त कब होगा कौन जाने ? तुम ज्ञानी हो सब पर दया···सब पर कृपा करो।

शंकर आकाश के पंछी को आप लोग पिंजर में न बन्द करें···

रामस्वामी तुम आकाश के पंछी हो शंकर !

शंकर हम सभी आकाश के पंछी हैं। नीड़ का मोह जगत का प्रपञ्च है···नीड़ का मोह मिटे, फिर आप देखें जगत का प्रपञ्च मिट जाता है कि नहीं। जो आप हैं वही मैं हूँ। भेद की बुद्धि जहाँ नहीं है वहाँ अपराध की कल्पना भी नहीं है।

रामस्वामी सब की आँखों से आँसू बह रहे हैं वत्स ! पाला मारे कमल से इनके मुख हो रहे हैं।

शंकर आप लोग मुझे आदेश दें···आप लोगों को जिस बात से सन्तोष हो···मुझे सब स्वीकार है। मुझे जो आप लोग यहाँ रोकना चाहें तो श्रुति के उद्धार की लहर जो अब आपके इस सेवक के कारण देश भर में चल चुकी है वह रुकेगी। वेद-विरोधी धर्म-लोक को संहार की ओर ले जायेंगे।

चन्द्रमणि रोकना नहीं चाहते लोग···

शंकर तब कहें क्या चाहते हैं…?

चन्द्रमणि कुल के ये पाँच जन तुमसे मन्त्र लेना चाहते हैं।

शंकर हा…हा…हा…कुल के पाँच किशोर मुझसे संन्यास का मन्त्र लेना चाहते हैं। गौतम नहीं हूँ मैं जो जगत को संन्यासी बनने का उपदेश दूँगा। सब संन्यासी बन जायेंगे तो इस भूमि का भोग कौन उठायेगा? धर्म और देश के शत्रु जब आक्रमण करेंगे, श्रुति और मातृ-भूमि की रक्षा में समर में कौन जायेगा?

रामस्वामी यही तो…यही तो…ठीक कह रहे हो वत्स!

शंकर कुल के मुख्य पुरुष आप हैं तात! बिना आपसे पूछे यह कुल क्षय हो रहा है और आप सो रहे हैं।

रामस्वामी पता नहीं संसार क्या हो गया?

शंकर [हँसकर] इस आयु में…चौदह और सोलह के बीच में जितने होते हैं सभी बिना पंख के आकाश में उड़ने लगते हैं। जगत का असंयत आकर्षण वैराग्य का रंग ले लेता है। कितने विवाहित हैं इनमें?

चन्द्रमणि अभी कोई नहीं…

शंकर इसीलिए इनके भीतर वैराग्य आ रहा है। कुल-पुरुष किस नींद में सो रहे हैं कि इधर उनका ध्यान नहीं जाता। [उन किशोरों को देखकर] अवस्था के अनुकूल विद्याध्ययन की ज्योति किसी के मुख पर नहीं है। तीन आश्रम के तीन पुरुषार्थ पार कर चुकने पर संन्यास की अवस्था आती है। उसके पहले इस ओर पग उठाना अग्नि से खेलना है।

रामस्वामी अपने धर्म में इस कुल के तुम अकेले न रहो। तुम्हारे साथ और भी जायँ यही सोचा होगा सबने…

शंकर श्रुति के धर्म के सामने मुझे नत मस्तक रहना है। गौतम की भाँति नया धर्म नहीं चलाना है। परम पुरुषार्थ संन्यास देही की अन्तिम अवस्था है। धर्म, अर्थ और काम तीन वर्ग जब पूरे हो जायँ तब चित्त संन्यास की ओर लगे।

एक स्वर आप तो अभी बालक थे।

शंकर हा···हा···हा···मेरा अनुकरण न करो सौम्य! कर भी सकते हो जो आठ वर्ष की आयु में चार वेद कण्ठस्थ कर लो, वेदान्त के पारंगत बन जाओ। श्रुति सिद्ध बन जाने पर जो श्रुति तुम्हें संन्यास की ओर ले जाय तब निर्भय होकर चल पड़ो। कर्म से हीन बन जाना संन्यास नहीं है। कर्म के समुद्र का पार कर जाना संन्यास है। श्रुति में यज्ञ का साक्षात्कार होता है, बिना यज्ञ किये भी उसके साक्षात्कार से वह फल मिल जाता है। तीन पुरुषार्थ के सारे भोग श्रुति में सिद्ध हैं। श्रुति सिद्ध करो फिर तुम्हारे लिए ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और बानप्रस्थ के नियम की आयु की आवश्यकता न रहेगी। सौगतों ने संन्यास को विनोद बनाया, क्रीड़ा बनाया, केलि बनाया। भारत भूमि का पौरुष सो गया और विदेशी, विधर्मी इस भूमि का मान हरण कर ले गये।

रामस्वामी चन्द्रमणि! तुम्हें और कुछ नहीं सूझा। यही सूझा···तुम्हें। सूझा होगा संन्यासी को इससे सुख मिलेगा।

शंकर मेरे सुख-दुःख की बात नहीं है तात! सुख और दुःख मेरे लिए दोनों समान हैं। लोक का सुख कहाँ है और दुःख कहाँ है देखना यह है! इन किशोरों के गृहत्याग से लोक का दुःख बढ़ेगा। एक कुल में एक समय एक ही संन्यासी रहे, लोक का स्वस्थ रूप यही होगा। कुल के हर परिवार

में जो एक संन्यासी हो जाय तो वह लोक रोगी कहा जायेगा और जो सभी वयस्क संन्यासी बन जायँ तो वह लोक मर जायेगा। गौतम से बहुत पहले श्रुति ने मृत्यु को स्वीकार नहीं किया था पर गौतम उससे अपरिचित रहने के कारण मृत्यु से डर कर ज्ञान की ओर भागे थे। पुत्र और पत्नी को परिव्रज्या देकर उन्होंने अपने परिवार का ही नहीं अपने लोक का वध किया था। वह कार्य मुझे नहीं करना है। योगियों के चक्रवर्ती गौतम की ओर मेरी श्रद्धा है पर उनकी विधि में विडम्बना मानता हूँ। भारत-भूमि उसका फल भोग चुकी, अब आगे न भोगे हमें तत्पर होकर देखना यह है!

चन्द्रमणि मीमांसक मण्डन को तब संन्यासी बनाने का फल क्या होगा?

शंकर लोक में जो अनेक मतमतान्तर फैले हैं...सुगतों, कापालिकों, भैरवों से जो सब ओर भय छा गया है वह मिटेगा। मीमांसक के पूर्व पुरुष भी संन्यासी हो चुके हैं। संन्यास का आयु आ जाने पर इस देश के नरेश भी संन्यासी बन जाते थे, इसलिए कि राग-भोग का अवसर वे अपनी परम्परा को दें। वृद्ध हो जाने पर भी प्राणी भोगी बना रहे यह कुरुचि है। मण्डन के दो आश्रम-भोग पूरे हो चुके थे। तीसरे और चौथे में अधिक अन्तर नहीं है। वेदान्त और मीमांसा अब एक मार्ग से चलेंगे, इसी मार्ग पर दूसरे भी आयेंगे और इस प्रकार श्रुति का लुप्त मार्ग फिर चल निकलेगा।

चन्द्रमणि तब कुल के इन किशोरों को आदेश क्या है?

शंकर वेद पढ़ें, ब्रह्मचर्य का निर्वाह करें...पत्नी और सन्तान से पूर्ण होकर धर्म, अर्थ और काम से तृप्त होकर जब इनका वह दिन आये संन्यास भी ले लें। पहले ये चित्त से संन्यासी

बनेंगे, गुरु की दीक्षा का अधिकारी चित्त का वैरागी होता है। अभी समझ गये या सन्देह है?

रामस्वामी साहस हो तो तुम संन्यासी बनो चन्द्रमणि! कुल का एक बालक गया वही बहुत हुआ। कुल-क्षय का दोष शंकर न लेंगे। ठीक कहा वत्स!

शंकर हाँ तात! अक्षर-अक्षर ठीक कहा आपने... [चिता की ओर देखकर] कब तक यह चिता जलती रहेगी? लपटें और ऊपर तक चढ़ रही हैं।

रामस्वामी चिता बनाने का ढंग कहाँ सीखा था शंकर...!

शंकर परिस्थिति सब सिखा देती है। माता का दाह करना था। शरीर चिता पर टिका रहे। काठ इतना हो कि शरीर भस्म हो जाय।

एक स्वर काठ चन्दन का है? चन्दन की गन्ध आ रही है।

शंकर कितना पुराना घर रहा होगा? घर के धूम से सभी काठ काले पड़ गये थे। उस समय तो गन्ध उनसे धूम की आ रही थी।

[पीछे की ओर जनरव होता है। हस्तिपक का स्वर सुनाई पड़ता है। घण्टे की ध्वनि भी रह-रह कर आती है।]

रामस्वामी [शंकर के पीछे की ओर हाथ उठाकर] कौन आ रहा है इधर से हाथी पर...

चन्द्रमणि अम्बारी के ऊपर छत्र भी लगा है।

शंकर केरल-नरेश राजशेखर आ रहे होंगे।

रामस्वामी हाँ, वही तो हैं।

शंकर जब मैं आठ वर्ष का था···जिस दिन माता को छोड़कर जा रहा था महाराज आये थे। अब तो सोलह पार कर चुका हूँ।

चन्द्रमणि हाँ, महाराज ही हैं, पीछे चामर-ग्राहक भी है।

शंकर तब आप इन कुल-पुत्रों के साथ आगे बढ़कर उनका स्वागत करें। हाथी से वे जहाँ उतर जायँ आप लोग उनका साथ छोड़ देंगे। सम्भव है वे इतने लोगों के घेरे में संकोच से कुछ न कहें।

रामस्वामी मैं तो रह सकूँगा शंकर···

शंकर केवल आप रह जायँ पर दूसरा कोई न रहे।

[शंकर और रामस्वामी को छोड़कर अन्य सभी जन चले जाते हैं।]

रामस्वामी महाराज बैठेंगे कहाँ शंकर! कोई आसन मँगा लें।

शंकर यहीं···इसी भूमि पर बैठेंगे···

रामस्वामी केरल के महाराज की हम सब प्रजा हैं।

शंकर पर यह भूमि उनकी माता है। आप के पास नहीं आ रहे हैं वे···संन्यासी शंकर के पास आ रहे हैं जो अब उनकी प्रजा नहीं है।

[हस्तिपक के मुख से हाथी बैठाने का संकेत-स्वर सुनाई पड़ता है।]

[नेपथ्य में] महाराज की जय हो···जय हो···जय हो!

[नेपथ्य में] आप सब को मैं एक साथ प्रणाम करता हूँ। संन्यासी के दर्शन के लिये मैं आया हूँ। लौटूँगा तब आप लोगों का सुख-दुख सुनूँगा।

रामस्वामी महाराज आ गये शंकर···

शंकर आने दें आप तो डर से गये हैं। [रामस्वामी असमंजस में उठकर खड़े होते हैं।]

राजशेखर [राजसी वेश, प्रभाव की मुद्रा] प्रणाम आचार्य! माता के अन्त समय आप आ पहुँचे। मेरे सामने आप ने उन्हें जो वचन दिया वह पूरा हो गया। [रामस्वामी की ओर हाथ जोड़कर] आपको प्रणाम करता है आप का यह सेवक। कालटी के मुख्य-पुरुष को मैं आचार्य के दर्शन के आनन्द में भूल ही गया था।

रामस्वामी कल्पवृक्ष की भाँति आप सदैव फूले रहें और अर्थी भ्रमर आपको सब ओर से घेरे रहें।

शंकर कल्याण हो महाराज! आप कुशल से तो रहे? परिवार और प्रजा पर कोई संकट तो नहीं आया?

राजशेखर केरल में जब आप ने अवतार लिया तभी इस भूमि के रोग-विषाद भाग गये। [चिता की ओर देखकर] अच्छा··· तो माता की चिता द्वार पर जल रही है!

रामस्वामी शंकर ने अपने कुल भर को शाप दे दिया धर्मावतार! इनके कुल के सभी शव अब घर के द्वार पर ही जलाये जायेंगे।

राजशेखर क्या सुन रहा हूँ आचार्य?

शंकर अब श्रीमान् मुझे आचार्य न कहें···मैं अब संन्यासी हो चुका हूँ···इस शब्द का अधिकारी अब मैं नहीं हूँ। ज्ञातिजन संन्यासी द्वारा शवदाह का विरोध करने लगे··· माता को यह वचन मैंने आपके आदेश पर दिया था। मेरे लिये वह राजाज्ञा थी···फिर भी कुल पर क्रोध के कारण नहीं···माता बराबर इस कुल की बनी रहें···कुल में जब

कभी शवदाह, श्राद्ध और पितृकर्म हों, कुल जन उन्हें स्मरण करें और उन्हें भी इन कर्मों में अंश मिले।

राजशेखर विधि का विधान मान कर आप लोग इसे स्वीकार कर लेंगे या मुझे···

रामस्वामी धर्मावतार को कुछ नहीं करना पड़ेगा। मुख्य पुरुष मैं हूँ और मैंने यह बात इनके मुख से निकलते ही स्वीकार कर ली।

राजशेखर राज्य की ओर से आप लोगों को जो वृत्ति मिलती थी दूनी कर दी जायेगी। संन्यासी शंकर ने जन्म लेकर आपके कुल को कालजयी बना दिया! केरल की भूमि के भाग्य से देवता ईर्ष्या करते होंगे।

शंकर सारी भूमि गोपाल की है महाराज! भगवती पार्वती और भगवती भारतभूमि मेरे लिये दोनों एक हैं। आपका केरल उस भगवती का एक चरण है, दूसरा चरण चोल है, कटि पर विन्ध्यमेखला, भुजायें सिन्धुभूमि और कामरूप, मध्यदेश उदर वक्ष···और कैलाश शीश है। माता के इस मोहक रूप में···जिसके हृदय के सत्र और अमृत है, हम सब श्रद्धावान् हों, उसके एक अंग की सेवा न कर समूचे शरीर की सेवा करें, तभी हम उसके ऋण से मुक्त हो सकेंगे।

राजशेखर हिमवान् के शिखर पर आप को जननी के इस रूप का दर्शन मिला होगा?

शंकर इस रूप के अनुराग में ही घर से निकला था। वेद के मन्त्र जहाँ गाये गये, उपनिषद् का रस जहाँ बरसा, ऋषियों के आश्रम जिस भूमि पर बने थे···[मौन होकर एकाग्र चित्त की मुद्रा]

राजशेखर आगे आपकी योजना अब क्या होने वाली है ? मीमांसक मण्डन को अपने मार्ग पर ले आने में तो आप सफल हुए···आप के विजय-रथ का अवरोध तो अब नहीं दिखाई पड़ता ।

शंकर महाराज ! व्यक्ति की विजय लोक का विषाद बन जाती है । गौतम के व्यक्तित्व की पूजा का फल यह भूमि अब तक भोगती चली जा रही है । एक की पूजा से अनेक पतित होते हैं । कृपा कर आप मेरे विजय-रथ की कामना न कर श्रुति के विजय-रथ की कामना करें ।

राजशेखर [मन्द हँसी] ठीक है आप को जिसमें सुख हो···

शंकर भट्ट कुमारिल से सुगतों की पराजय कर्मकाण्ड और तर्क के योग से हुई । मीमांसक मण्डन भी यही करते रहे···पराशर के कर्मकाण्ड और व्यासदेव की बुद्धि से जब लोक तृप्त नहीं हुआ, भावरूप शुकदेव अवतरित हुए । कर्म और बुद्धि में जब भाव मिल जाता है तभी श्रुति की त्रिवेणी बनती है । मुझे जन-जन के हित में इसी त्रिवेणी को सुलभ कराना है । मीमांसा और वेदान्त दोनों का लक्ष्य एक था···मार्ग भी दोनों के समानान्तर रहे···एक पथ का यात्री दूसरे पथ के यात्री को बराबर देखता भी रहा । अब वे दोनों मिलकर एक हो गये । मीमांसक मण्डन से मुझे बड़ा बल मिला है । फिर भी जो नाम तो श्रुति का लेते हैं पर काम उसके विरोध में करते हैं उनको···और जो श्रुति के नाम से ही [दोनों कानों पर दोनों हाथ रख कर] भय खाते है उनको··· इसी मार्ग पर ले आना होगा ।

राजशेखर पहले से आप का संकेत कापालिक, भैरव, भागवत आदि से है और दूसरे से सौगत, चार्वाक और जैन आदि से··

शंकर जी···इस समय देश में धर्म के जितने सम्प्रदाय चल पड़े हैं उनकी गणना भी सम्भव नहीं है। उनके घोर कृत्य ··महामांस विक्रय और [ललाट के ऊपर हाथ रख कर] यहाँ हवन-कुंड···

राजशेखर नहीं···नहीं···न कहें···सोचकर शरीर काँप जाता है··· ललाट के ऊपर गुग्गुल जलाने से जले मांस के नीचे अस्थि में भी अग्नि से काले पड़े एक ऐसे साधक के गर्त को मैं देख चुका हूँ···उसकी ओर देखने में भी भय तो कम पर घृणा अधिक उत्पन्न होती थी। ऊँह···बस इस प्रसंग की अब कोई बात नहीं···

शंकर किसी सौगत-विहार का दर्शन मिला है आपको···

राजशेखर जी नहीं···निर्वाण की लालसा मेरे भीतर अभी नहीं आई।

शंकर [हँसकर] किसी दिन देख लें···मद के प्रभाव में कुम्भकार के चक्र सी घूमती आँखें···वर्षों से स्नान न करने के कारण स्वेद से भीगे कन्था और देह से मोक्ष देने वाली दुर्गन्धि··· तरुण भिक्षु और तरुणी भिक्षुणियों की विलास-लीला।··· देख लेते तथागत तो पत्नी और पुत्र को नींद में, सेज पर छोड़कर भाग निकलने का उन्हें खेद होता।

[राजशेखर और रामस्वामी हँसने लगते हैं। शंकर चिता की ओर देखते हैं। लपटें अभी उठ रही हैं। वृद्धा अभी अचल बनी बैठी है।]

राजशेखर अरे! वह महिला चिता के इतने निकट क्यों बैठी है?

शंकर गौतम जिन भाव और भोगों को छोड़कर निकले थे वही सब बिहारों में भोगा जा रहा है, बिना किसी परिपाटी···

नियम…बन्धन और अंकुश के। श्रुति में ये सभी भोग हैं, पर उनके नियम…परिहार…और अंकुश भी हैं।

राजशेखर इन सुगतों का होगा क्या?

शंकर हिंसा से बचकर…जैसे होगा इन्हें श्रुति की परिधि में ले ही आना होगा।

राजशेखर कुछ सूझ रहा है आपको किस प्रकार…

शंकर हर बिहार में जो एक त्रिकालदर्शी मद और मन्त्र की सिद्धि में लगा है, चन्द्रमा के सब ओर नक्षत्र मण्डल-सी जिसकी शिष्य-मण्डली है, उसे शास्त्रार्थ में हराकर उसकी शिष्य-मण्डली को अपना शिष्य बनाकर अपनी विधि में ले आना है। कुमारिल ने प्रयाग में मुझे जो मान दिया… उसे जो जन देख-सुनकर वहाँ से अपनी भूमि लौटे, उनसे मेरे कार्य का प्रचार अब देश के कोने-कोने में हो चुका है। मीमांसक मण्डन-जैसे विद्या के समुद्र मेरे शिष्य बन गये, यह सूचना भी सब ओर फैल चुकी है। माता ने वचन के बन्धन से मुक्त किया। अब शिष्यों के साथ चार दिशाओं में श्रुति की दिग्विजय स्थापित कर श्रुति के धर्म-संघ की स्थापना करनी है। ऐसे चार पीठों में एक की स्थापना शृंगेरी में हो चुकी है।

राजशेखर दक्षिण भारत में तो इस पीठ के स्थापन से अब कोई आप-का विरोधी नहीं रह गया।

शंकर यह यश आप फिर मुझे दे रहे हैं…श्रुति का विरोधी कोई नहीं रह गया, यह कहें…

राजशेखर आपका व्यक्तित्व मिट गया है, आप अब श्रुतिरूप हैं इस अर्थ में मैं कह रहा हूँ…

शंकर सब ठीक···पर आपके मुख से ऐसा कथन आपके धनुष के चले बाण से भी अधिक दुखद हो रहा है।

राजशेखर शम और दम आपकी कोटि का मेरे—जैसे सामान्य जन में कहाँ से आयेगा ? आपको स्वप्न में भी दुःख देने के पहले मैं भूमि के भीतर चला जाऊँगा।

शंकर शृंगेरी पीठ के अध्यक्ष मीमांसक मण्डन सुरेश्वर के नाम से इस पीठ के संचालक हैं। जिस दिशा में जो सबसे पवित्र भूमि होगी, महापुरुषों के निवास से जो किसी युग में प्रतिष्ठा पा चुकी होगी, वहीं तीन पीठ और खड़े होंगे।

राजशेखर उन स्थानों की सूचना देकर शृंगेरी के स्थापित पीठ की भूमि की विशेषता भी कह दें।

शंकर बदरिकाश्रम के उत्तर व्यास गुहा में जिन दिनों ब्रह्मसूत्र पर भाष्य रच रहा था सूचना मिली कि चीनीदस्यु बदरिकाश्रम पर चढ़ आये और उनके भय से नारायण की मूर्ति पुजारियों ने नारद कुंड में डाल दी। नारायण की मूर्ति का कुंड में पड़ा रहना मुझे असह्य हो उठा। चतुर्भुज विष्णु का दर्शन मुझे वहीं रात को स्वप्न में मिला···जैसे यहाँ गृह छोड़ने के पूर्व वासुदेव ने स्वप्न में अपनी मूर्ति की रक्षा करने को कहा था, जब अलवाई उनके मन्दिर के नीचे की भूमि काट कर गिरा रही थी। जागते ही मैं मन्दिर से मूर्ति लेने दौड़ पड़ा। मूर्ति उठा कर दस पग लौटा था कि पूरा मन्दिर नदी के गर्भ में समा गया।

रामस्वामी एक पहर रात रहते मन्दिर गिरा था। गिरने की ध्वनि ऐसी ही हुई थी कि सारा गाँव जाग पड़ा। पहले तो लगा कि समूचा पर्वत चन्द्रमौलीश्वर के मन्दिर के साथ गिरा है। मैं इधर

भागा···कुछ जन और भी पीछे हो लिये···[**पर्वत की ओर हाथ उठा कर**] वहाँ पहुँचा आगे उस अँधेरी रात में, बादल ऐसे घिरे थे···मानों काजल का वितान तना था···वायु का वेग पैर को कहीं टिकने नहीं दे रहा था···लगा किनारे के गोपालमन्दिर से निकल कर बाल भगवान् चले आ रहे हों···देह सिहर उठी···शंकर दोनों हाथों में मूर्ति उठाये था। उस समय मूर्ति का भार इसकी देह से तो अधिक था ही।

शंकर [**हँसकर**] बोल न देता तो तात गिर पड़े होते···भगवान् की मूर्ति बचाने आया था···मैं शंकर हूँ····इतना मुझसे सुन कर इनको धीरज आया।

रामस्वामी जिस समय वन के जीव गुफा से नहीं निकलते उस समय इसे यहाँ देखकर मेरी देह से प्राण उड़ गया। भगवान् की मूर्ति शिवगुरु के बालक पुत्र ने ऐसी भयानक रात में बचा ली···दस कोस से लोग इसे देखने आये थे। पीपल के पेड़ के नीचे मूर्ति रख कर यह देर तक धरती पर बैठ कर साँस खींचता रहा, तब तक और जन आ गये थे।

शंकर फिर तो आप लोग मुझे हाथों में और कन्धे पर उठा कर ले गये·· धरती पर मुझे पैर भी नहीं रखने दिया। माता जाग कर द्वार पर खड़ी शिव की प्रार्थना कर रही थीं, जब मैं वहाँ फिर पहुँचा।

राजशेखर आपने माता को सूचित नहीं किया, कहाँ जा रहे हैं?

शंकर स्वप्न में भगवान् ने जो कहा था···मूर्ति की रक्षा के लिए मैं भागा, माता से कहने-सुनने का अवसर कहाँ था? जाग जाने पर मुझे आने देतीं? फिर तो मन्दिर के साथ मूर्ति भी नदी में चली गई होती।

राजशेखर ऐसा ही स्वप्न चतुर्भुज विष्णु ने आपको वहाँ बदरीनाथ में दिया।

शंकर हाँ…और यह भी आदेश मिला कि मैं स्वयं नारदकुंड के अथाह जल में प्रवेश कर मूर्ति निकालूँ और अपने हाथ स्थापित कर उसकी पूजा भी करूँ। व्यासगुहा से नारदकुंड गया। जिस पुजारी ने मूर्ति कुंड में डाल दी थी उसी को भ्रम हो रहा था कि मूर्ति कुंड में कहाँ मिलेगी। एक स्थान पर आगे दो पद चिह्न मिले…अनुमान से कि कुंड के करार के इतने निकट दूसरा कौन आया होगा मैं वहीं कुंड में कूद पड़ा। दस पुरुष जल के नीचे ठीक मूर्ति पर मेरा दायाँ हाथ पड़ा और मैं मूर्ति के साथ बिना परिश्रम के ऊपर आ गया। उस श्रम में मुझे चरम सुख मिला था, इसीलिए बिना परिश्रम की बात कह रहा हूँ।

राजशेखर क्या होने वाला है…पश्चिम में यवन दस्यु मूर्ति विध्वंस कर रहे हैं और उत्तर में चीनीदस्यु…

शंकर हमारी देव मूर्तियों के विध्वंसक सौगत हमारे भीतर हैं। शाक्यकुल-पुत्र गौतम की मूर्ति वह बनाते जा रहे हैं, पर विष्णु, शिव और भवानी की मूर्तियों के विध्वंस के लिए पश्चिम में यवनों को और उत्तर में पीले चीनी ध्वंसकों को निमन्त्रित कर रहे हैं। दस-बीस हाथ ऊँची और उसी अनुपात में चौड़ी बुद्ध की मूर्ति इनकी भूमि और इनके प्राण का भार नहीं बनती पर हमारी दस अंगुल की देव मूर्ति के भार से भी इनकी धरती धँसने लगती है। उत्तर के ज्योतिर्मठ की स्थापना इसी बदरिकाश्रम की पुण्य भूमि में होगी। भगवान् सहायक हों तो पश्चिम की द्वारिका पुरी की

प्राचीन भूमि पर शारदा मठ और पूर्व की पुरी में गोवर्धन मठ खड़े होंगे। तीनों स्थान आदि काल से पवित्र चले आ रहे हैं।

राजशेखर दक्षिण का मठ रामेश्वरम् या काञ्चीपुरम् में रहा होता।

शंकर शृंगेरी का प्राचीन नाम शृङ्गगिरि है जहाँ ऋषिशृङ्ग ने तपस्या कर वह सिद्धि प्राप्त की थी, जिसका प्रसाद यज्ञ का आचार्य बन कर उन्होंने महाराज दशरथ को चार पुत्र-रत्न के रूप में दिया था, आदि ऋषि वशिष्ठ ने जिनकी पूजा उस यज्ञ में की थी। उस भूमि का जो चमत्कार मैंने अपनी आँखों देखा अब आप वह सुनें।

[सिर घुमा कर चिता की ओर देखते हैं। लपटें सीधे ऊपर उठ रही हैं।]

राजशेखर जी···

शंकर जननी की देह से जलते काठ के साथ जो लपटें निकल रही हैं। उनके दर्शन का लाभ ले रहा हूँ। मन की ऐसी गति हो गई है कि बिना उधर देखे चित्त चञ्चल हो जाता है।

राजशेखर शृंगगिरि का चमत्कार जो आपने अपनी आँखों देखा····

शंकर माता और कुल-जन को छोड़कर गुरु की खोज में जब उत्तर बढ़ा···कदम्ब राज्य से होकर शृंगगिरि के नीचे प्रचंड आतप में पहुँचा। सूर्य ठीक शीश के ऊपर आ गये थे···मध्याह्न काल में जिस समयदिशायें अग्नि दाह में पड़ी थीं···मृग-मरीचिका समुद्र का लहरों की भाँति सब ओर लहरा रही थी··पर्वत के नीचे जल-कुंड के किनारे वृक्ष की छाया में बैठ गया।

राजशेखर आप वहीं बैठे थे जब वह चमत्कार आप ने देखा··

शंकर कुंड से निकल कर भेक शिशु तीर की भूमि पर खेल रहे थे। दो शिशु भयानक आतप में अधमरे से भूमि पर लेट गये। इतने में विशाल कृष्ण सर्प वहाँ आ गया और अपना फण पसार कर उन दोनों पर उसने छाया कर दी।

राजशेखर अहा! धन्य है···धन्य है उस भूमि का प्रभाव जहाँ सर्प अपने भक्ष्य पर दया कर गया।

शंकर उपकार और भूतदया के इस दृश्य को मैं अपलक देखता रहा। मध्य आकाश से सूर्य-मण्डल जिस क्रम से नीचे पश्चिम में उतरता गया सर्प अपना फण भी उधर ही झुकाता गया। ताप कम होने पर दोनों बाल भेक सीधे बैठ गये और सर्प की देह पर खेलने लगे। सर्प अनुराग और अनुकम्पा के भाव में अपना सिर हिलाता रहा। वे दोनों जब कुंड में उतर गये, सर्प मेरी ओर मुड़ा···सामने आकर कुण्डली मार कर फिर फण पसार कर जैसे फण से नृत्य कर रहा हो, झूमता रहा। उसकी इस लीला से मैं हँस पड़ा। उस क्षण मुझे भासित हुआ कि वह सर्प भी आनन्द में हँस रहा है। [दोनों हाथ जोड़कर] उसे जब मैंने प्रणाम किया, उसने भी उसी भाव में अपना शीश सीधा भूमि पर टिका दिया।

रामस्वामी उसे देखकर डरे नहीं शंकर! [भय का स्वर]

शंकर हिंसा का कोई लक्षण उसके मुख पर नहीं था···दया की किरणें उसकी आँखों से निकल रही थीं। हँसकर मैंने कहा, 'अब आप सुख से अपना मार्ग लें, मैं भी चल रहा हूँ।' सर्प वहाँ से मेरे दायें निकल गया और सिर घुमाने पर मुझे फिर नहीं देख पड़ा।

राजशेखर तब आपने यह पीठ सचमुच दक्षिण के सब से पवित्र स्थान पर खड़ा किया है।

शंकर मैं उठकर पर्वत पर गया। वहाँ गुफा में एक ही तपस्वी बैठे थे, उनसे यह घटना सुनाई, वे हँसने लगे।

राजशेखर आपकी बात का उन्हें विश्वास नहीं हुआ ?

शंकर बोले—"इसमें विस्मय मत करो। त्रेता में शृंगी ऋषि का यह आश्रम था। एक योजन की चतुर्दिक् भूमि में हिंसक प्राणी भी हिंसा भूल जाते हैं।" मन में तभी संकल्प उठा जो चन्द्रमौलीश्वर मुझे वेदान्त के उद्धार में कृतकार्य करें तो धर्म का पहला पीठ यहीं खड़ा होगा।

राजशेखर और वह अब खड़ा हो भी गया।

शंकर मेरी धरोहर तो आप के पास सुरक्षित है ?

राजशेखर धर्म की धरोहर कहाँ जायेगी···जब तक मैं सुरक्षित हूँ··· केरल की भूमि और उस पर बसी प्रजा सुरक्षित है तब तक वह भी है।

शंकर आपके मन्त्री ने उसे माता के सामने रख दिया था तब तक मैं स्नान कर लौटा और रजत पात्र में सोने की उन मुद्राओं से चकाचौंध में पड़ गया। उनकी संख्या कितनी थी बिना जाने ही मैंने मन्त्री को उठा लेने के लिये कहा था।

रामस्वामी तुम्हारे लिए साँचे में ढली एक हथिनी भी उस समय महाराज ने भेजा था···आसन, वस्त्र, भोजन की सामग्री भी प्रचुर थी पर तुमने लौटा दिया।

शंकर आप भूल रहे हैं तात ! आहार की सामग्री और वस्त्र मंत्री आप लोगों को बाँट कर चले गये।

रामस्वामी होगा तब···स्मरण की शक्ति भी तो अब न रही।

राजशेखर आप की आयु में किसे स्मरण की शक्ति रह जायेगी···आप सरीखे वृद्ध केरल में दो-चार होंगे अधिक नहीं।

रामस्वामी इधर दस कोस में कोई नहीं है महाराज! भगवान् मेरी आयु शंकर को देकर मुझे अब ले चलें।

शंकर अपनी आयु संन्यासी को देकर क्या करोगे तात! संन्यासी से तुम्हारा कुल नहीं बढ़ेगा।

[राजशेखर और शंकर हँसते हैं।]

रामस्वामी इस कुल में जन्म लेकर सभी मरते गये···तुम जैसा अमर कोई नहीं हुआ। महाराज! आप के प्रजाजन का यह गाँव तीर्थ नहीं बनेगा?

राजशेखर तीर्थ तो यह अब बन गया। इस भूमि की महिमा अब काल भी न मिटा पायेगा ब्राह्मणदेवता! मुझे जो आदेश हो, मन्दिर, धर्मशाला मैं बनवा दूँगा। आप के धरोहर की बात रह गई संन्यासी, जब चाहें ले लें।

शंकर शृंगेरी पीठ के संचालक अब के सुरेश्वर और तब के मीमांसक मण्डन के पास आप मेरी वह धरोहर लेकर स्वयं जायेंगे। मेरे लिए जो हथिनी आप ने यहाँ भेजी थी वह न हो तो दूसरी आप वहाँ ले जायेंगे। विद्यार्थियों की पाठशाला, अध्यापकों के निवास, पीठ-संचालक के भवन के साथ आदिवराह और शारदा के मन्दिर भी बनने हैं। जितना द्रव्य आप ने भेजा था···उसके ब्याज के साथ···

राजशेखर ओ! हो! संन्यासी अब पूरे व्यावहारिक बन गये।

[हँसते हैं।]

शंकर आप जानते हैं कि बिना व्यावहारिक बुद्धि के पीठ का

संगठन नहीं चलता। पीठ के संकल्प के पहले संगठन और साधन पर तो सोच ही लिया जाता है।

राजशेखर आप जोड़कर बता दें कितना ब्याज बना। मूलधन पाँच सहस्र स्वर्णमुद्रा था।

शंकर [हँसकर] ब्याज का नाम भर सुना है···गणना कैसे की जायेगी···इसका पता नहीं है।

रामस्वामी [हँसकर] ब्रह्मचारी की जानकारी इस विषय की नहीं है··· इससे महाराज लाभ न लेंगे।

राजशेखर शिव···शिव···क्या कह रहे हैं आप।

शंकर तात! शुद्ध परिहास कर रहे हैं महाराज! राजा और वृद्ध ब्राह्मण का परस्पर ऐसा व्यवहार···सनातन है।

राजशेखर [हँसकर] सनातन की शुद्ध परिभाषा दी आप ने···[राम-स्वामी से] पाँच सहस्र स्वर्ण मुद्रा आठ वर्ष की अवधि में कितनी हुई जो आचार्य ने धरोहर के रूप में रखने को कहा था। आशा तो नहीं थी कि अपनी धरोहर लौटा कर ब्रह्मचारी मुझे कृतार्थ करेंगे। भाग्य से वह अवसर मिला तो मुझे कितना देना होगा?

शंकर दुगुनी संख्या आप दे दीजिए।

रामस्वामी सामान्य ऋण भी चार वर्ष में दुगुना हो जाता है, यहाँ आठ वर्ष बीत गये। नियम से तो वह अब चौगुना हो ही गया। ब्रह्मचारी इस विषय से कोरे हैं जो दूना कह गये।

शंकर मेरे मुँह से जो निकल गया उतना ही महाराज! दान-रूप में जो और भी आप देना चाहें तो वह तो धर्म होगा। शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र और कर्ण इसी धरती पर खेले थे। दान की महिमा श्रुति की महिमा है।

राजशेखर आपके मुख्य कुल-पुरुष की बात क्यों कटे ? इनकी गणना मानकर मैं बीस सहस्र स्वर्ण मुद्रा, एक हाथी और पाँच थान पटोर भेज दूँगा।

शंकर आप स्वयं लेकर आयेंगे, उस समय मैं वहीं···ऐसा नहीं··· धर्म के कार्य में विलम्ब क्यों···यहाँ से मैं आप के यहाँ चलूँगा, फिर हम दोनों शृंगेरी साथ जायेंगे।

राजशेखर अहो भाग्य ! फिर आज ही चलें यहाँ आप रुककर क्या करेंगे ?

रामस्वामी आज की रात तो इन्हें अपने कुलजन के साथ काटनी होगी।

राजशेखर संन्यासी कुल का बन्धन काट देता है।

रामस्वामी पर उसकी दया भी क्या सारे जगत पर होती है केवल अपने कुल पर नहीं ? [कण्ठ भर आता है।]

शंकर हाँ···हाँ···कातर न हों आज की रात मैं आप लोगों के साथ रहूँगा।

रामस्वामी [आँखें पोंछ कर] अच्छा···अच्छा···अपनी ओर से भी कह दें महाराज !

राजशेखर आप डर रहे हैं कि इसमें मेरी कोई अवहेलना हो रही है ? ऐसी बात नहीं है। संन्यासी की कृपा के भिक्षुक हम दोनों समान हैं। आज यहीं रहें। कल एक पहर दिन चढ़े यहीं गज आ जायेगा।

शंकर पैदल चलने में मैं धरती के निकट रहता हूँ···बालक को माता की देह पर जितना सुख मिलता है···मुझे धरती पर चलने में मिलता है। आप के साथ शृंगेरी की यात्रा में

एक ही अम्बारी में चलेंगे। संन्यासी के साथ की यात्रा भी शुभ नहीं कही गई है।

राजशेखर विवाह और संग्राम में···धर्म और तीर्थ की यात्रा में इसकी रोक नहीं है।

[पद्मपाद प्रवेश कर घोर दुःख में शंकर के चरणों पर शीश रख देते हैं।]

शंकर कहो···भद्र! क्या बात है? ऐसे संकट का भाव क्यों तुम्हारे अंग-अंग से निकल रहा है।

पद्मपाद सर्वनाश हो गया स्वामी!

शंकर किस मोह में पड़ रहे हो···तप, समाधि, विद्या और शम में तुम किसी में मुझसे घट कर नहीं हो, फिर किस सर्वनाश की बात कर रहे हो। संन्यासी का सर्वनाश कहाँ होता है?

पद्मपाद मातुल के घर में भाष्य का वार्तिक रखकर रामेश्वर गया, लौटने पर देखा वह घर अग्नि से स्वाहा हो चुका है···उसी के साथ वार्तिक भी···

शंकर [जैसे किंचित् ध्यान लगाकर] तुम्हारे मातुल मीमासंक थे?

पद्मपाद आपका अनुमान सत्य है। उनका भागिनेय वेदान्ती रहे और इसी आयु में संन्यासी भी···इसे न सहकर, मेरे सत्कार का कृत्रिम अभिनय कर, मेरे वहाँ से चले जाने पर उन्होंने यह कृत्य किया। अपने हाथ अपना घर भस्म कर उन्होंने वार्तिक भी भस्म कर दिया।

शंकर अपना दुःख तुमने ऐसा प्रकट कर दिया जिसमें उन्हें विश्वास हो जाय कि अब वार्तिक नहीं बन सकेगा।

पद्मपाद जी····नहीं···मैंने दाईं भुजा आकाश में उठाकर घोषणा की ···मेरी बुद्धि नहीं जली है, मैं फिर वार्तिक बना लूँगा।

शंकर सुन्दर···ऐसा न कहा होता वहाँ तो मुझे कष्ट होता। जितना वार्तिक तुम मुझे सुना चुके हो वह अब भी मेरे कण्ठ में हैं। श्रृंगेरी में मुझसे सुन कर सब लिख लेना।

पद्मपाद जी···यही करूँगा।

राजशेखर तब तो मेरे नाटकों का भी उद्धार होगा। तीन नाटक आप ने मेरे सुने थे जब मैं यहाँ आया था।

शंकर शब्द-शब्द मुझे स्मरण हैं वे आज भी···उन्हें मैं इसी बार आपके उपवन में सुना दूँगा, चाहें तो लिख लें। पर वे हुए क्या ?

राजशेखर अपनी कन्या के पास मैंने लेजाकर तभी रख दिया। इसी बीच उसका विवाह हुआ···वह श्वसुरगृह गई। मैं इस विश्वास में रहा कि कौतूहल-वश ले गई होगी। लौटकर जब आई मैंने उससे पूछा···धरती पर आँखें गड़ा कर उसने कह दिया, उसे पता नहीं। वह तो यहीं छोड़ गई थी।

शंकर [हँसकर] स्पष्ट है उस बेचारी का कोई दोष नहीं। वह तो पिता की कीर्ति मान कर उन पुस्तकों को ले गई होगी कि उसके श्वसुर-पुर में लोग जानेंगे कि वह गुणी पिता की पुत्री है। वहाँ आपके जामाता ने ले लिया होगा और आपकी कन्या पर ऐसा अंकुश जमाया होगा कि वह इस रहस्य को कहीं न कहे। तभी आपके पूछने पर वह धरती पर ही देखती रही। जामाता श्वसुर की कन्या, धन, धरती तो लेता ही है उसकी विद्या-बुद्धि भी छीन लेता है। जाने दें, कोई बात नहीं।

[सब हँस पड़ते हैं।]

राजशेखर कन्या तो जामाता के लिए जन्म ही लेती है···धन, धरती का

दान कन्या के साथ धर्म ही है। श्वसुर की सरस्वती भी जामाता ले ले यही थोड़ी चिन्ता की बात है। पुत्री जितने दिन यहाँ रही मेरी ओर सिर उठा कर उसने देखा नहीं। उस बार जब गई···कई बार उसे देखने की इच्छा हुई। बार-बार उसको बिदाई का लग्न भी भेजा पर वह न आ सकी। उन पुस्तकों के साथ पुत्री भी मुझसे दूर हो गई। आप से सुन कर लिख लूँगा और जब उसे सूचना मिलेगी पुस्तकें पुनः लिख ली गई हैं तब सम्भव है वह मेरे पास आ सके और पुत्री के दर्शन का सुख मेरे भाग्य में हो।

शंकर जगत का यह प्रपंच ज्ञानियों को भी मोह लेता है महाराज!

राजशेखर महामाया बलपूर्वक ज्ञानियों के चित्त को भी मोह की ओर आकर्षित कर देती हैं। आप सरीखे विरले होते हैं जिन पर महामाया की माया नहीं चलती।

शंकर नहीं···नहीं···राजन्! ऐसा न कहें भगवती की कृपा का भरोसा है। हम उनके सामने अहंकार नहीं कर सकते। मीमांसक की पत्नी भगवती भारती ने मुझे परास्त कर ही दिया था। अपनी विजय उन भगवती ने लोक कल्याण के लिए स्वेच्छा से मुझे समर्पित कर दिया···नहीं तो प्रतिज्ञा के अनुसार तो मुझे संन्यास छोड़कर गृहस्थ बनना पड़ता।

राजशेखर जिस विषय का प्रश्न उन्होंने आपसे किया था···पर-काया प्रवेश कर उसका ज्ञान भी प्राप्त कर लिया आपने और जब आप उनके उत्तर देने लौटे वे शरीर छोड़ कर परलोक जा चुकी थीं।

शंकर अवधि जो वे न स्वीकार करतीं तो उस समय तो मैं पराजित था और उनसे उत्तर देने की अवधि तो कुल एक महीने

की ली थी…राजकुमार की काया के माध्यम से उस रस में पड़ने पर छ महीने तक मुझे न अपने संन्यास का चेत आया न उस अवधि का…जिसकी याचना मैंने भगवती से की थी।

राजशेखर [पद्मपाद की ओर संकेत कर] इन ब्रह्मचारी का नाम क्या है, किस भूमि में इनका जन्म हुआ था ?

शंकर इनका नाम घर का तो सनातन था पर काशी में जब बारह वर्ष के गुरु के शिष्य बने और उसके साथ उत्तर काशी में उसके बुलाने पर जब ये उमड़ी हुई अलकनन्दा को पार करने लगे, इनके चरण के नीचे कमल के फूल निकलते गये और गुरु के प्रति अडिग निष्ठा के कारण उन्हीं कमलों पर चरण रख कर ये नदी पार कर गये तब से इनका नाम पद्म-पाद हो गया। वन में श्रीराम के रक्षक जैसे अनुज लक्ष्मण रहे वैसे ही यह मेरे रक्षक हैं। जब तक इनकी कृपा न हो मैं एक पद किसी ओर नहीं खिसक सकता।

पद्मपाद [संकोच में] शिष्य के साथ भी आचार्य विनोद करते हैं।

शंकर पंच भूत का यह विग्रह जब मिट जायेगा तब भी तुम मेरे वंश के रक्षक रहोगे। गायक के वेश में दो और साथियों के साथ जो तुम राजभवन में कलावंत बन कर न गये होते तो क्या अब तक भी मैं माया के उस जाल से निकल सका होता ?

राजशेखर मेरी बुद्धि में आप की बात नहीं बैठ रही है ?

शंकर अवधि जब बहुत अधिक बीत गई, पद्मपाद ने मेरे दो अन्य शिष्यों के साथ कलावंत गायकों का वेश बनाया और अपनी कला दिखाने का व्याज बनाकर मेरे निकट पहुँचे। साधु वेश में तो मंत्री भुक्तास्थान मण्डप में जाने नहीं देते।

वहाँ संगीत में इन्होंने मुझे मेरे शुद्ध स्वरूप का बोध कराया, तब मैं उस मोह से मुक्त हुआ।

राजशेखर फिर आप भगवती भारती को उत्तर देने गये।

शंकर मुझे अवधि देने के साथ ही वह कह पड़ी थीं कि इस विद्या का अनुभव लेकर जब मैं उनके उत्तर के लिये जाऊँगा, एक ओर से मैं माहिष्मती में प्रवेश करूँगा, उधर वे काया छोड़ देंगी। मेरे वहाँ पहुँचने के कुल एक दण्ड पहले वह देह छोड़ चुकी थीं। बालक देवगुरु उनकी छाती पर सिर पटक कर रो रहा था और मीमांसक की दशा वही थी जो संध्या के सूर्य की होती है।

[पर्वत की ओर देखकर] वह देखिये पूर्व के मीमांसक आ भी रहे हैं। साथ में उनके पाँच शिष्य हैं।

राजशेखर शृंगेरी से यहाँ तक की यात्रा पैदल...मीमांसक का भवन सुना है राजप्रासाद था, उन्हें पैदल चलने का अभ्यास तो रहा न होगा।

शंकर किसी भी कार्य की साधना देह की शक्ति से अधिक मन के संकल्प पर टिकती है। सुरेश्वर का चित्त हिमालय-सा विस्तार में और शेष के फण-सा दृढ़ता में है। उपाधि के रूप में सुरेश्वर के नाम के साथ भारती का संयोग शृंगेरी पीठ में चला चुका हूँ। शिष्य-परम्परा में जितने लोग आते जायेंगे सब के साथ भारती का संयोग होता जायगा। चार पीठों के अन्तर्गत संन्यासियों के दस कुल होंगे, उनमें एक कुल भारती के नाम से चलेगा।

राजशेखर इस प्रकार मीमांसक की यशस्विनी पत्नी के नाम को आप ने अपनी सिद्धि का अंग बना लिया।

शंकर भगवती ने जो कृपा कर अपनी विजय मुझे न दे दी होती तो श्रृंगेरी पीठ की स्थापना न होती। श्रुति का उद्धार स्वप्न ही रहता।

मण्डन [प्रवेश कर शंकर को हाथ जोड़कर] प्रणाम आचार्य! उपस्थित महापुरुषों के परिचय का लाभ मुझे मिल सकता है?

शंकर [रामस्वामी को संकेत कर] यह मेरे छोटे पितामह रामस्वामी हैं।

मण्डन प्रणाम तात!

रामस्वामी संन्यासी को क्या आशीर्वाद दूँ! आप तो अब मेरे प्रणम्य हैं इस वेश के कारण। मीमांसक वेश में होते तब मैं आप को धन, पुत्र और यश का आशीर्वाद देता।
[उपस्थित सभी जन हँसते रहते हैं।]

शंकर [राजशेखर की ओर संकेत कर] आप केरल-नरेश, वेद और ब्राह्मण के भक्त महाराज राजशेखर हैं।

राजशेखर मैं आपको प्रणाम करता हूँ स्वामी!

मण्डन आपके प्रताप से श्रुति का विजय-शंख सब दिशाओं में ध्वनित हो और आपकी राज्यलक्ष्मी अचल रहे।

शंकर वाणी से शब्द-ब्रह्म का ऐसा सुगम प्रवाह कम देखने को मिलेगा महाराज! जो आप सुरेश्वर भारती की वाणी में पा रहे हैं।

राजशेखर आपके प्रसाद का यह सब फल है। माहिष्मती के मीमांसक मण्डन पण्डित का वैभव किसी राजकुल से कम नहीं है··· उनके कण्ठ में सरस्वती का वास है, स्वयं सरस्वती-स्वरूपिणी उनकी पत्नी भारती देवी हैं। यह सब तो युगों से सुनता आया। हाँ एक जिज्ञासा है?

मण्डन कह कर उसकी पूर्ति कर लें।

राजशेखर आपके द्वार पर पिँजरे में बद्ध शुक-सारिका अभ्यागतों से सचमुच गम्भीर प्रश्न पूछा करते थे?

शंकर मार्ग में जल भरनेवाली स्त्रियों ने पूछने पर मुझसे कहा था···"जिसके द्वार पर पिंजरबद्ध शुक और सारिका प्रश्न करें, 'वेद अपना स्वयं प्रमाण हैं या किसी दूसरे प्रमाण से बाधित हैं, यह जगत ध्रुव है कि अध्रुव है' जान लेना मण्डन पण्डित का भवन वही है।" इनके द्वार पर जब मैं पहुँचा मेरे साथ अपार जन-समूह हो गया फिर भी पिंजरबद्ध पक्षियों के ये प्रश्न मेरे कान में पड़े थे।

मण्डन वह ऋषियों की गुरुकुल-परम्परा का प्रभाव है राजन्! मेरा कुछ नहीं, उस सहवास में पक्षी भी वेद का मर्म पा लेते हैं। [चिता की ओर देखकर] आचार्य! गृह-द्वार पर वह चिता किसकी जल रही है?

शंकर मेरी जननी की चिता है वह बन्धु! पूर्वजों के द्वार पर जल रही है। उनके कण्ठ में अभी प्राण था। मेरे अंक में हंस छोड़कर वह गोलोक गई।

मण्डन मैं तो माता की चिता की प्रदक्षिणा करूँगा। [भावविभोर-से मण्डन आगे बढ़ते हैं। शंकर, राजशेखर, पद्मपाद और रामस्वामी भी उनके पीछे चल पड़ते हैं। सभी जन चिता की प्रदक्षिणा करने लगते हैं।] जगद्गुरु की जननी की चिता···गृह के द्वार पर जल रही है।

[पर्दा गिरता है।]

———